अँधारुआ



ସଚ୍ଚିଦାନନ୍ଦ ରାଉତରାୟ

वर्ष 1986 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित शीर्षस्थ उड़िया साहित्यकार डॉ० सच्चिदानन्द राउतराय अन्यतम कवि होने के साथ ही एक प्रख्यात कथा-शिल्पी और साहित्य-चिंतक भी हैं। उनकी कहानियों ने फ्रॉयड और युंग के मनोविश्लेषण का उड़िया साहित्य-जगत् में प्रवेश कराया। 1935 में प्रकाशित उनका उपन्यास 'चित्रग्रीव' ऐण्टी नॉवल (अ-उपन्यास) का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। स्मरणीय है कि विश्व-साहित्य में ऐण्टी नॉवल का आन्दोलन बाद में शुरू हुआ था।

जनकवि सची राउतराय ने अपनी कहानियों के लिए भी विषय और पात्र जनजीवन से ही उठाये हैं। उनकी अधिकतर कहानियाँ श्रमिक, कृषक तथा अन्य पिछड़े वर्गों के संघर्षों, अभावों और उत्पीड़नों के बारे में हैं जो समसामयिक जीवन की विद्रूपता और विकृतियों पर तीखा व्यंग्य करती हैं। उनका साहित्य एक क्षयी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध मानव-अधिकारों का एक आक्रोशी घोषणा-पत्र है। वह मानव-गरिमा और भय-मुक्ति के मन्त्रदाता हैं।

शीर्षक-कथा 'अंधारुआ' का नायक इसका हृदय-द्रावक उदाहरण है कि किस प्रकार सामाजिक कुरीतियाँ, रूढ़ियाँ, अन्धविश्वास और आडम्बर एक सीधे-सच्चे मेहनती किसान का विध्वंस कर देते हैं।

सची राउतराय लगभग 50 वर्ष से साहित्य-साधना में तल्लीन हैं। प्रस्तुत हैं उनके सम्पूर्ण कथा-साहित्य में से चुनी गईं सर्वाधिक चर्चित और प्रशंसित 22 कहानियाँ। हमें पूरा विश्वास है कि हिन्दी के सुधी कथा-प्रेमी भारतीय कथा-यात्रा के इन महत्त्वपूर्ण पड़ावों से अवगत होकर परितृप्ति का अनुभव करेंगे।

ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित साहित्य

अँधारुआ

(कहानी-संग्रह)

उड़िया मूल
सच्चिदानन्द राउतराय

हिन्दी रूपान्तर
शंकरलाल पुरोहित



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

राष्ट्रभारती
लोकोदय ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक 461

अँधारुआ

(कहानी-संग्रह)

सच्चिदानन्द राउतराय

प्रथम संस्करण : 1988

मूल्य : 45-00

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ,
18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड,
नयी दिल्ली-110003

मुद्रक
पारुल प्रिण्टर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

ANDHARUA (Short Stories) by Satchidananda Rautroy. Published by Bharatiya Jnanpith, 18 Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003. Printed at Parunl Printers, Naveen Shahdara, Delhi-110032. First Edition 1988, Price Rs. 45.00

मुखबन्ध

सची राउतराय कवि के रूप में ही अधिक परिचित हैं। अपनी कहानियों और उपन्यासों के कारण वे साहित्य-जगत् में चिर-स्मरणीय रहेंगे। कम उम्र में ही उन्होंने कविता लिखना शुरू कर दिया था। 1927 ई. में उनकी पहली कविता 'पंचामृत' नामक उड़िया पत्रिका में छपी थी। तब वे ग्यारह वर्ष के थे। आज साठ वर्ष से निरन्तर कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना और गवेषणात्मक लेख लिखते आ रहे हैं। उनके साहित्यिक जीवन की 'षष्ठिपूर्ति' के अवसर पर भारत की सर्वोच्च साहित्यिक स्वीकृति 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' इस सन्दर्भ में और भी महत्त्व-पूर्ण हो उठती है।

बचपन से वे कविता लिखते रहे हैं, मगर बीच-बीच में कहानियाँ भी लिखते रहे। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनका प्रकाशन भी होता रहा। कुछेक तो काफी चर्चित भी हुई हैं। 1933 में 'युगवीणा' नामक पत्रिका में 'विसर्जन' का प्रकाशन हुआ। उसी समय 'नवीन' पत्रिका में 'मरुचारिणी' भी छपकर खूब चर्चित हुई। मगर यह किसी संकलन में आने से पहले ही काल के गर्भ में लीन हो गई।

1940 में कटक से 'आरती' नामक पत्रिका निकला करती थी। इसमें भी सची राउतराय की कुछ महत्त्वपूर्ण कहानियाँ छपीं। तब उड़िया के कथा-साहित्य में एक नये दिगन्त की सूचना मिल रही थी। 'आरती' के सम्पादक ने राउतराय की कहानी 'मशान का फूल' पर सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा था—"यह कहानी उड़िया कथा-साहित्य में नया मोड़ लायेगी। गल्प के क्षेत्र में नये दिगन्त का संकेत दे रही है।" इसके बाद राउतराय की 'माटी का ताज', 'मृत कुंई', 'राजकुमार', 'अंधारुआ', 'हाथ' आदि कहानियाँ प्रकाशित हुईं। इनसे उड़िया कहानी के आधुनिक युग की नींव पड़ी। अवचेतन मन की विभिन्न दिशाओं पर प्रकाश पड़ा। ग्राम तथा नगर-जीवन के अंतर्विरोध, औपनिवेशिक भारतवर्ष तथा उड़ीसा के जनजीवन की समस्याओं और कृषिजीवी सरल ग्राम्य-जीवन का सची की इन कहानियों में विश्वस्त चित्र मिलता है। स्वाधीनोत्तर काल के आदमी का मोह-भंग, द्विधा और संकट, निःसंग-बोध, सामाजिक भ्रष्टाचार और दुर्नीति के साथ खण्डित व्यक्तित्व का समझौता एवं विद्रोह अपूर्व कलात्मकता के साथ उभरा है।

1935 के अन्त में जब 'चित्रग्रीव' उपन्यास का प्रकाशन हुआ, तब सची बाबू कलकत्ता सिटी कॉलेज में इण्टर में पढ़ रहे थे। इस कृति में उनकी तीक्ष्णधी, आकर्षक अभिव्यक्ति क्षमता, तीव्र गति-सम्पन्न गद्यशैली का परिचय मिलता है।

कुछ आलोचकों का मत है कि उड़िया-साहित्य में यह पहला 'एण्टी नॉविल' (Anti Novel) है।

इस संकलन की 'जंगल' नामक कहानी मास्को के राडुगा द्वारा 1983 में प्रकाशित अन्तर्राष्ट्रीय कहानी संकलन 'प्युपिल्स ऑफ़ द अर्थ' (Peoples of the Earth) से चुनी गई है। 1972 में श्री राउतराय की कुछ कहानियों के अनुवाद 'अमृत बाज़ार पत्रिका', 'हिन्दुस्तान' आदि विशिष्ट पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी अँग्रेज़ी में अनूदित कहानियों का एक संकलन 'Short Stories of Sachi Rautroy' शीर्षक से भी प्रकाशित हो चुका है। इसके अलावा, कुछ कहानियों के नाट्य-रूपान्तरों का विभिन्न संस्थाओं द्वारा मंचन भी हुआ है।

प्रस्तुत संकलन की कहानियों से एक प्रतिभाशाली लेखक के चिन्तन की कुछ झलक पाठकों को मिल सकेगी, इस विश्वास के साथ !

—जगन्नाथ प्रसाद दास

अनुवादकीय

पिछले दस बरसों में उड़िया कथा-गल्प, कहानी छापकर भारत की हर पत्र-पत्रिका गौरवान्वित हुई है। और अब सची राउतराय को सम्मानित कर उड़िया कविता के साथ-साथ कथा-साहित्य को भी गौरव दिया गया है। यहाँ भारतीय धरती का विस्तृत भूखण्ड अपनी समूची हरियाली, धधक, ऊबड़-खाबड़ जमीन, वन-जंगल, गाँव-शहर सबमें रच-बस गया है। सची बाबू को हिन्दी में रूपान्तरित करना मानवीय जीवन के विविध आयामों मे एक साथ जीने के खट्टे-मीठे-तीखे तेज अनुभव जैसा लगता है।

सची बाबू ने कहानियाँ कम लिखी हैं। मगर उड़िया में उन्होंने कथा-साहित्य को प्रगतिशीलोन्मुख करने के लिए एक नई दिशा प्रदान की है। अत: भाषा के क्षेत्र में वे बहुत सतर्क रहे हैं—एकदम अपने पात्रों की तरह बेलाग। कहीं भी वे उसे आलंकारिकता या संस्कृत के दुरूह या भारी भरकम शब्दों से नहीं सजाते। इसी तरह अनुवाद के समय उसमें आंचलिक शब्दों के बहुत कम प्रयोग के कारण आने वाली कठिनाइयां प्राय: नहीं आतीं। उनके पात्र जैसे सार्वजनीन (Universal) लगते हैं, भाषा भी वैसे ही अंचल-विशेष के शब्दों में सीमित न रहने के कारण अनुवाद के समय खुली नदी में जी भर तैरने जैसा आनन्द देती है। आधी सदी हो गई ये कहानियाँ रची जाते। इस बीच देश का भूगोल बदला है, इतिहास बदला है, राजनीति और अर्थनीति में बहुत-कुछ बदलाव आया है। सची बाबू का कथाकार उन सबमें से सचेतन रचनाकार की तरह गुज़रा है। उसने राजनीति के दाँव-पेंचों को, आर्थिक छल-छद्‌म और शोषण को, धार्मिक रूढ़ि एवं कट्टरवाद को भोगा है। सची बाबू की करुण आँखों से सजल होकर वह सब कथा के स्तर पर छलका है।

करुणा की भाषा बहुत सहज होती है, उत्पीड़न का अनुभव दर्दीला होता है। यही करुणा, वेदना और नेह-सहानुभूति की भाषा का रूपान्तरण अन्दर तो खूब-खूब भिगोता है, पर लेखनी में बहुत ही सरलता-सहजता लिये चलता चला जाता है। इसी कारण सची बाबू की कहानियों का अनुवाद प्रस्तुत करते समय कहना पड़ता है—

"बाँटनवारे को लगै ज्यों मेंहदी को रंग"

अनुक्रम

मशान का फूल

पोड़ा वसन्त शासन (ब्राह्मणों का गाँव) का जगू तिवाड़ी का कीर्तन करने, मृदंग बजाने, गांजा पीने और मुरदे फूंकने, मुरदों को कन्धा देने वालों के रूप में इस इलाक़े में खूब नाम है।

मुरदा जब चिता पर सें-सें करता है या उसकी टाँग ताव खाकर ऊँची हो जाती है, अथवा पेट की अँतड़ियाँ जलकर उनसे पानी रिसता है तो आग नहीं सुलगती, तब और मालभाई (शव-वाहक) जगू की ओर देखते, उसकी सलाह लेते।

गांजे के नशे में लापरवाही से जगू कुछ दूर बैठा होता। ऊँघते हुए हड़बड़ा कर खड़ा होता, और फिर अरथी में से कोई तीन हाथ बाँस खींच लेता, "मार··· ले···दे···" कहकर मुरदे पर तीन-चार चोट कर देता।

मुरदे का सिर चूर-चूर हो जाता, या फिर दही निकलकर थोड़ी जगह की आग दब जाती। उठी हुई टाँग लाठी की चोट से मुड़ जाती और गिर पड़ती काठ के बीच। पेट फटकर चौड़ा हो जाता, और अँतड़ियों में जीभ लपलपाती आग घुस जाती। देखते-देखते सब कुछ जल-भुन कर राख हो जाता।

घुटने भर राख, छाज, बुहारी, हण्डी, ठीकरे और फटे-पुराने चीथड़ों-भरा मशानपदा (शमशान-क्षेत्र)। नख, बाल, हड्डियों के छोटे-बड़े टुकड़े, एवं इधर-उधर की गन्दगी।

जगू तिवाड़ी मजे में घर लौट आता। पोखर के घाट पर तेल लगाते-लगाते जाँघ पर थाप मार आराम से कहता, "ठाकुर जी की दया से काम ठीक-ठीक निपट गया।"

गाँव में जब हैजा-फैजा होता, माता निकलती—मुरदे ढेर के ढेर हो जाते। जगू तिवाड़ी की खातिर तब बढ़ जाती गाँव में। सब आकर उसकी खुशामद करते। कोई आँख से आँसू बहाता, कोई टेंट से पैसे निकालता, कोई ठोड़ी छूकर कहता—"भैया···बाबू !···!" जगू तिवाड़ी गम्भीर होकर सबके निहोरे सुनता। जवाब में तुरत कुछ नहीं कहता।

"कल रात से मुरदा घर में पड़ा है, बासी होने आया !"[1]

"वहू घर में कब से मरी पड़ी है एक कोने में…"

तरह-तरह के निहोरे जगू से किये जाते।

जगू अपने प्राप्य के बारे में किसी के आगे कोई लिहाज नहीं करता। तोला-भर गाँजा, डली भर अफीम, चवन्नी टेंट में ठूंसे बिना नहीं जाता। इसके अलावा चावल की गठरी, घाट पर नयी धोती, दस घर न्यौता आदि ऊपरी लाभ अलग होते।

सुहागन मरे तो जगू का लाभ कुछ अधिक होता, पैसेवाले हों तो कान के बाले, नाक का कांटा…और ग़रीब घर हो तो पाँव की मच्छी, चांदी की अँगूठी जगू को दक्षिणा में मिल जाती। मुरदे को आग पर चढ़ाने से पहले उसकी देह टटोल-टटोलकर देख लेता—कहीं कोई गहना-गाँठी है या नहीं, होता तो निकाल रख लेता। कभी-कभी मुरदे से नाक-फूल या कान की बाली सहज ही नहीं निकलती, जगू तिवाड़ी झुंझलाकर दाँत भींच लेता, खींच-तानकर गहना मुरदे की नाक से, कान से खींच लेता। नाक फट जाती। कान से खून दिख जाता—नीला-नीला पनीला रस ! और चेहरा गीला हो जाता, मगर जगू की उधर कोई निगाह नहीं। यह तो रोज की आदत हो गयी, एक तरह की ऊपरी वृत्ति बन गयी है। इस तरह करते-करते वह पत्थर हो गया है।

पुख्ता मुरदा मिलने पर—चवन्नी टेंट में रखे बिना जगू अरथी को कन्धा नहीं देगा। अपने प्राप्य में मीन-मेख देखे तो कह देगा, "लाश बासी पड़ी रहेगी—मुझे कुछ कहना मत।" दूसरे मालभाइयों (शववाहकों) को भी सिखा-बुझाकर अड़ जाता।

रुपया मिल गया तो फिर ढोल की थाप के साथ-साथ क़दम डालता, 'राम नाम सत्य है' ज़ोर से बोलता हुआ जगू तिवाड़ी ठाठ से आगे-आगे चलता। ग्रेनाइट पत्थर-सी स्याह देह पर सफ़ेद जनेऊ के तार दूर से चमचमाते दिखते…

उसकी ऊँची आवाज़ सारे गाँव में भर जाती। बस्ती भर के औरत-मरद आ जुटते वहाँ, छोटे-छोटे बच्चे जाकर छुप जाते घरों में।

मशान में धोबी ने नहरनी से गर्भवती औरत का पेट चीर बच्चा निकाल अलग कर दिया तो जगू तिवाड़ी दो चिता सुलगा माँ-बेटे दोनों को चितपटाँग लिटा देता। कभी-कभी दोनों को एक ही चिता पर पास-पास लिटाकर आग लगा देता। एक पर जगह न होती तो कोंचने की लकड़ी से शिशु को तोड़-मोड़ जलते काठ के बीच घुसेड़ देता।

---

1. एक विश्वास है—दिन में मरे तो सांझ से पहले और रात में मरे तो भोर से पहले मुरदा जला देना चाहिए। वरना वह बासी हो जाता है।

इस तरह जगू तिवाड़ी खेत में पैदा होने वाले कुछ बोरे धान के अलावा कभी-कभी ऊपरी दो पैसे कमा लेता, अपना पेट भरता, घर चलाता, लेन-देन करता और शादी-ब्याह का काम भी चला लेता।

कोई उसे मुंह खोल कुछ नहीं बोल पाता। उस गाँव में जगू के सिवा कोई दूसरा पुख़्ता जानकार बाम्हन मालभाई नहीं है।

कोई जगू का प्राप्य कम करने की चेष्टा करता तो जगू 'काम की तुलना में माँग कुछ नहीं' कहकर तरह-तरह के तर्क रखता। अपनी बहादुरी दिखाने पुरानी बातें कहता। प्रमाण देकर कहता, "मेरे जैसा कोई है दूसरा, मुरदे फूंकनेवाला ?" इस बात पर खूब गर्व करता वह।

पिछले बरस नरसिंह मिश्र की औरत को कैसे ढू-ढाँ अचानक बरसे पानी में भी जला आया। आते समय सातगछा बगीचे के छोर पर एक गरदन मरोड़ मर्दल के चक्कर में पड़ गया। उसके बाद पौष की ठण्डी रात में जलोदर में मरे, नाथ ब्रह्मा को जलाते समय मुरदे के पेट से मटके भर पानी निकला, चिता बुझ गई, फिर जगू कैसी चतुराई से इतने कठिन मुरदा को जला सका, यह पुरानी कहानी है—खुद रस ले-लेकर वह बताया करता है।

जगू तिवाड़ी का अनुभव और मुरदे जलाने की विद्या में उसकी अगाधता कितनी है यह बात कोई भी गाहक घड़ी-आध घड़ी बात कर भी जान जायेगा।

रोज़ जगू तिवाड़ी भागवत-घर में बैठ अपने हिस्से की कथा सबको एक-एक बार कह सुनाता। टँप-टँप मेघों भरे मौसम में उसके श्रोता उसे घेरकर बैठ जाते। गाँजे की फूंक लगाकर जगू पहले गला खँखारता। श्रोता समझ जाते कि अब कहानी शुरू होगी।

"एक बार कोई अच्छी-सी लाश जलाकर लौटते समय की बात है—मुक्ता-झर के पास घने आम की डाल पर बैठी एक डायन कैसे तो अँतड़ी जलाकर शिशु सेंक रही थी···।" किसी निपुण चित्रकार की तरह वर्णन कर रहा था जगू। श्रोता सहमे-सिकुड़े दीवार के सहारे बैठे सुनते।

इसी तरह उस छोटे-से ब्राह्मण गाँव में जगू तिवाड़ी का जीवन कटता।

आसोज की रात। साँझ से कुछ मेघ घिर आये हैं। जगू तिवाड़ी का सिर दुख रहा था शायद, दोनों कानों के पास माथे पर थोड़ा-सा कली चूना लेपे हुए सिर को कम्फोटर से ढाँपकर बाहर चबूतरे पर बैठा हरिवंश सुन रहा था।

गाँव में रोना-पीटना सुनाई दिया। पड़ोस की बस्ती वाली दुकान से पान-जर्दा लिये कोई लौट रहा था। उसी ने खबर दी कि जटिया मौसी के यहाँ उस की बहू मर गयी है।

देखते-देखते सारे गाँव में हलचल मच गयी। "चलो दो पैसे आमदनी होगी।" जगू तिवाड़ी को कुछ राहत मिली।

कितने ही लोग आकर कई बातें कह गये। बस्ती की औरतें दस तरह की बातें फुसफुसाने लगीं। किसी ने कहा, "पाप का पेट था।" किसी और ने कहा, "पेट खाली करने को कोई दवा-दारू खायी थी, जहर फैल गया सारे शरीर में।"

जगू तिवाड़ी गुम-सुम सब सुनता रहा, मुंह मोड़ लिया। जात जाने के भय से इतना बड़ा रोज़गार···सारी आशा टूट गयी।

जटिया मौसी का दुनिया में कोई नहीं—बस सास-बहू दो ही। बहू आने के महीने बाद बेटा गया था कलकत्ता—पैसा कमाकर उधारी चुकाने के लिए। तीन बरस हुए कोई खोज-खबर नहीं। पहले तो खत-वत दिया करता था, पर साल भर से वो भी बन्द है। कलकत्ता से उस गाँव के लौटने वालों का कहना है—वहीं कहीं एक औरत को लेकर कलकत्ता में ही मटियाबुरज में रहता है। घर पर बहू अकेली। आज वह तो गयी—पर ज़िन्दगी भर का कलंक लाद गयी बुढ़िया के सिर पर। बुढ़िया बाम्हनी सिर पर हाथ दिये बैठी है।

उसकी हालत दिन भर गाये भी पूरी न होती। गाँव के कुछ मुखी लोग निकले और बात को सम्हाल लिया। "बड़े-बूढ़े मुखी पहले बहू को काबू में रखने आगे क्यों नहीं आये?" जटिया मौसी गाली-गलौज करती रही। आखिर फैसला हुआ—जल्दी लाश खतम करनी होगी। वरना कहीं छाटिया थाने में खबर हो गयी तो बाम्हन गाँव का नाम ही डूब जायगा। और बाक़ी सभी तो यहाँ बहू-बेटी लेकर रहते हैं!

जटिया मौसी ने दाँतों में तिनका रख सबको प्रणाम किया कोटि-कोटि। उसे इस घोर विपद से बचा लिया, अतः सबके आगे कृतज्ञता जतायी (यही तरीका है कृतज्ञता का)।

मुरदे को कन्धा देने गाँव के तीन-चार जवान निकल पड़े। आगे आये खुद-ब-खुद। पुवाल की रस्सी बनायी गयी। अरथी सजी। छाज, ठीकरा, छींका, बुहारी, लकड़ी सब ले आये दरवाज़े पर। मुरदे की देह कपड़े से ढँककर अरथी बाँधी गयी। मगर एक पुख्ता मालभाई (शववाहक) न हो तो कैसे चले? आध घण्टे में लाश खतम करनी होगी। वरना खतरा है। थाना बाबू को खबर हो गयी तो गाँव भर के लोग बाँध लिये जायेंगे। गाँव में फोड़नेवालों की कोई कमी नहीं।

मुखियों ने कहा, "तिवाड़ी जी को बुलाओ। तिवाड़ी के बिना इतना बड़ा काम सही-सही नहीं होगा।"

जगू तिवाड़ी को खबर दी गयी। मगर वह नाराज, ज़िद एक ही—"पाप का पेट लिये मरी है! मैं उसे छूऊँगा? असती, कुलटा को कन्धे पर उठाऊँ?"

सबने कहा-समझाया। मगर वह अचल-अटल रहा।

आखिर बड़े-बूढ़ों ने जाकर बहुत कहा-सुना तो जगू तिवाड़ी मुरदे को कन्धा देने को राजी हुआ। मगर पाँच रुपये नगद—वरना इतना बड़ा पाप कौन ढोयेगा!

साफ़-साफ़ कह दिया। जटिया मौसी के घर के कोने का गड्ढा खोदा गया—जो कुछ निकला सो लकड़ी-किरासिन, धोबी-नाई के लिए ही पूरा नहीं पड़ा। आखिर फ़ैसला हुआ—बहू के नाक में जो फूल है, जगू तिवाड़ी को मिलेगा।

जगू तिवाड़ी राजी हो गया और उसने आवाज़ लगायी—"राम नाम सत्य है।"

मशानपदा। मैली-कुधोली जगह। हण्डी, लकड़ी के टुकड़े, खोपड़ियाँ, छाज, ठीकरे, कोयले···और बाँस के टुकड़े! चारों ओर तैर रही है एक कैसी भी मुरड़ान।

पथश्राद्ध (रास्ते में दिया जाने वाला पिण्डदान कार्य) हुआ। इसके बाद मुरदे को लेकर लकड़ियों के ढेर पर चित्त लिटाया गया, चेहरे पर से कपड़ा हटा दिया गया।

चवन्नी भर का सोना! लालटेन की रोशनी में जगू तिवाड़ी ने देखा—फूल मुरदे की नाक पर चमक रहा है।

मेघ छँट गये थे—धीमी-धीमी चाँदनी उतर रही थी मुरदे के फ़ीके सफ़ेद चेहरे पर।

साथ आये मालभैया ने कहा, "अरे, तिवाड़ी जी! जल्दी-जल्दी काम सलटाओ। पुलिस को भनक पड़ गयी तो फँस जाएँगे!"

जगू ने फूल तोड़ने के लिए हाथ बढ़ाया। उसने देखा, छोटी बहू का चेहरा चाँदनी में जैसे अधमुरझाया कुंई फूल हो। चेहरे के चारों ओर घिर आया है घने घुँघराले बालों का जंगल। ठीक वैसे जैसे आकाश में चाँद के पीछे काले स्याह मेघों की घनी छाया।

बहू के चेहरे पर तैर रहा है मुरझाये फूल का लावण्य! उसके बेतरतीब बालों पर चाँदनी की लहरें एक पर एक आती-जाती दिख रही हैं।

जगू ने हाथ वापस ले लिया। आकाश के फीके चाँद की ओर देखा।

ऐसे कितने ही मुरदे जलाये हैं जगू ने। कभी मन में ऐसा तूफ़ान नहीं उठा। "इस छोटे-से सुन्दर मुखड़े को असुन्दर करूँ! पर ज़रा-सा वह 'गुना' (नाक का अलंकरण) खूब-खूब टिप रहा है!" इस नारी के बारे में कितना कुछ नहीं सोच गया वह मुरदा फूंकनेवाला जगू!

तभी जगू को याद आया: यह बहू थोड़े ही दिनों में माँ बन जाती। और कितना कुछ न होती,···मगर कुछ न हो सका!

दोष किसका है?

छुपे-छुपे चाँदनी के बेशुमार सागर के बीच में सूने मशानपदा की नंगी छाती पर लेटी है एक अधखिली नारी! अकेली! सच, यह एकदम अकेली है! लाश ढोने वाला जगू तिवाड़ी उसे ही निरख-निरख रहा है—सच, कितनी अकेली देह के, एक घर में बन्द जीवन को बदल कर, जरा कुछ और तरह जीने का स्वाद

अनुभव करने जाकर, शायद आज वह मशान की लाश बन गयी है ! बहू के स्याह पड़ते चेहरे पर दिख गयी अनेक दिन जीने की भूख ।

जगू को देर करते देख संगी मालभाई झुंझला उठे । धमकाकर बोले, "यों देरी करेंगे तो हम मुरदा छोड़ चले जायेंगे । पुलिस आयेगी तो सम्हालना ! लो, जल्दी···गुना निकालो···काम आगे बढ़े । वरना हम आग लगाते हैं ! गुना के लिए तो मरे जा रहे थे तब ! अब हाथ नहीं चलता ! क्यों ?"

जगू तिवाड़ी का सपना टूट गया । लाज में भर गया । फिर भी अन्दर की कमज़ोरी को छुपाने के लिए बोला—

"छि: यह मुरदे का गुना घर में भरूँगा ? वह तो पाप का पेट···"

संगियों ने पूछा, "तो नहीं लेंगे ? आग लगाते हैं !"

जगू ने लापरवाही में कहा, "हाँ, लगा···दो···! ठीक से देना ! जलाकर राख कर दो !"

हुत् हुत् आग जल उठी। लपलपाती जीभ चाटती गयी । बहू की मांसल देह आग में सीझ काली स्याह पड़ गयी । और फिर पर्त-दर-पर्त बुलबुले की तरह फूटने लगी ।

जगू तिवाड़ी स्तब्ध देखता रहा जलती लाश ।

दूर कुचले के झुरमुट पर उल्लू, गीध और चीलों की जमात बैठी थी। दूर से खेत में उस पार से तैर आयी सियार की कान-फाड़ी भूख भरी चीख !

गन्दा-अंधेरा, हाड़-रखे कोयलों भरा मशान । चिता में से कोई सड़ी गन्दी हवा आकर चारों ओर भर गयी ।

संगियों ने जगू से कहा, "उस छिनाल के गहने लेकर घर में नहीं गये, अच्छा किया । अमंगल हो जाता । देखा कैसे छटपटा कर मरी है ! अपने पेट के शिशु को मारने चली थी, खुद नहीं मरती क्या ? धर्म क्या दुनिया में नहीं रहा ?"

उस जलती राख में आँख फिराते-फिराते चिढ़कर जगू बोला, "बस करो ! दूसरों का विचार तुम न करो। आदमी क्या आदमी को ठीक से समझ सकता है ?"

●

मृत कुँई

चिलचिलाती दुपहर ।

साँय-साँय हवा । फिर गरम हवा । उसमें पेड़-पौधे, लता-पत्तर, झाड़-झंखाड़ सब सीझ गये हैं । झुरमुटों वाली पथरीली ज़मीन की छाती चीरती हुई आ रही है दूर से किसी कपोत की आवाज़ ।

तण्टिकट झर के पास एक आम के तले लोचन एक टिन पीट-पीटकर चिड़ियाँ उड़ा रहा है । आगे पका खेत—पीले धान की बाली पर तैरती फिर रही हैं खुली हवा की लहरें ।

लोचन के हाथ में है ताड़पत्तों का छाता—जिसमें खोंसी गयी है पंछी की पाँख, और झूल रहा है पतला धागा । बीच-बीच में वह ढोल बजाकर गीत गा रहा है—

"उड़िगला गेंडालिया, झाड़िदेला पर ।
तु छाड़िलु बाप, भाई, मु छाड़िलि घर ।"

"वाह···वाह···खूब कहा !"

"एक आम फेंकना !"

लोचन गीत बन्द कर चौंक गया । मुड़कर देखा, कांसे का बड़ा गिन्ना लिये सुन्दरी खड़ी है ।

सुन्दरी फटी साड़ी पहने थी । माथे के बिखरे बाल बाहर आकर इधर-उधर उड़ते गले में गुंजा की माल में छुप गये थे ।

लोचन थोड़ा हँसी करने के लिए बोला, "कहाँ, मेरे हाथ क्या आम तक जाते हैं !"

"मरदूद ! तू पेड़ पर चढ़ना नहीं जानता ?"

"वाह-वाह ! कानखजूरे सारी देह फुला देंगे मेरी ।"

लोचन को हैरान करने का मन नहीं हुआ सुन्दरी का, कुछ सोच-विचारकर युक्ति निकाल कर बोली—

"इतनी बात का है ? एक ढेल चला !" और वह आम की एक सूखी लकड़ी कहीं से उठा लायी, "ले एक बार इसे ही फेंक !"

लोचन ने निशाना साध उसे फेंका। एक बार में पाँच-दस आम टपा-टप झर गए। पेड़ पर बैठी चिड़ियाँ किचर-मिचर कर उड़ गयीं।

सुन्दरी एक अमिया दांत से काटती हुई खट्टे मुँह से बोली, "उई ! ये तो बिलकुल स्वादी नहीं ! माँकड़ खिया पोखर के उस पार जो कच्चा स्वादी आम का पेड़ है, वो बहुत स्वाद भरा है। उसका एक टुकड़ा भी मुंह में डाल लो, कटोरा भर भात हजम कर देगा !"

लोचन समझ गया। मगर सुन्दरी की बात पर चलने की हिम्मत नहीं हुई। वह जानता है माँकड़ खिया पोखर यहाँ से पाँच कोस है। आने-जाने में घड़ी भर से कम नहीं लगेगा। इधर साआन्त (उसके मालिक) गुड़ाखू घिसते हुए (दन्त-मंजन करते हुए) अभी इधर हाथ-मुंह धोकर आ पहुँचेंगे।

बात को टालकर बोला, "कल सवेरे थोड़ा तड़के आ जाना। उधर माँकड़ खिया से आम तोड़ दूंगा।"

सुन्दरी हामी भर अमिया का चटकारा भरती चल पड़ी।

फिर से लोचन टीन बजाता चिड़ियाँ उड़ाने लगा···

रोज-रोज सुन्दरी इसी तरह लोचन के आगे कोई-न-कोई फरमाइश करती। कभी लता पर से गुंजा तोड़ने तो कभी सूते की फाँस बना छोटी मेंढकी पकड़ने को कहती। लोचन मालिक के घर का काम करते-करते, जहां तक होता छोटी-मोटी फरमाइश पूरी कर देता।

लोचन और सुन्दरी अड़ोस-पड़ोस में रहते, रोज सुबह उठते एक-दूसरे से भेंट-मुलाक़ात, हँसी-मसखरी, फिर रूठना-मनाना भी। तो भी इस नेह के अत्याचार में बढ़ते-बढ़ते यह चौदह और वो ग्यारह बरस में पाँव रख चुके थे।

अगली सुबह सुन्दरी बेर तोड़ने, साथ में अपनी सहेलियाँ—अपन्नी और सेवती को लेकर उधर गयी थी। ठीक से पौ फटी भी न थी। नीम अँधेरा गाँव के छोर पर, छान पर बैठे चौकीदार तोमीज खाँ के मुरगे ने बाँग दी—कुक डूकू ···ऊ···ऊ···ऊ···

लोचन की आज बारी है माँकड़ खिया खेत की रखवाली करने की।

दातून चबाता-चबाता, बगल में सेंके हुए दो मुट्ठी चावल लेकर निकला था। कुछ ही दूर चला था कि काँटे पर पैर पड़ गया। वह लहू-लुहान हो गया। आज सुबह-सुबह पता नहीं किसका मुँह देखा था !

खेत के पास पहुँचा तो ठाकुर जी जाग गये थे। लाल-लाल, हाल ही में जनमी बछिया की तरह, सूरज देव अचानक पहाड़ की ओट से आकाश में कूद आये।

लोचन ने जीभ-छोली बनाकर मुँह साफ़ किया। चावल-भाजा निकालकर

खा लिए, नाले का भरपेट पानी पिया। और फिर रोज की तरह चिड़ियाँ उड़ाने लगा···

घड़ी भर बाद सुन्दरी आ पहुँची। बेर खाते-खाते होंठ स्याह पड़ गये थे। माथे पर खोंसे थी फूलों का एक गुच्छा। गले की माला काँटों में उलझ लापरवाही में टूट गई है। गला एकदम नंगा दिख रहा था।

"आज तोड़ देने को कहा था!" काले दाँत दिखाकर पूछा सुन्दरी ने।

लोचन ने उधर देख पूछा, "सुराहीदार गरदन···सुन्दरी!" उसके अन्दर की शैतानी हो-होकर हँस पड़ी।···सुराहीदार गरदन! दही की हण्डी···सेडली··· पेडली···।

अपन्नी और सेवती हें-हें कर हँस पड़ीं। सुन्दरी का गोरा चेहरा लाल पड़ गया। गुस्से में फूलकर वह लोचन को गाली देते जा रही थी, मगर खुद को सम्हाल लिया। फनफनाकर बोली—

"आम तोड़ दोगे या नहीं? बोलो। मैं चली, ज्यादा नखरे निकालता है!"

लोचन ने सुन्दरी का गुस्सा देख लिया। और चिढ़ाने के लिए बोला, "तू मुझे बदले में दो पेमली बेर देगी तो?"

सुन्दरी के पास बेर थे ही नहीं। इसी बीच हाथ खाली हो गए थे, उसने यों ही पल्लू झाड़ दिया।

लोचन ने हँसी में चिढ़ाकर कहा, "निगल गयी न सब! तुझे कभी पूरा पड़ेगा!"

सुन्दरी का पारा चढ़ आया, नाक भन्नाकर बोली—

"अमिया नहीं देगा तो? ··ठीक है!"

लोचन ने देखा सुन्दरी खफा हो गई है। स्वर बदल नरम आवाज़ में बोला—

"ना···जा···अभी देता हूँ, ज़रा रुक जा! तू गुस्सा हो गई?" दौड़कर नीचे से डाल की सूखी लकड़ी उठायी और सँवारा उसे।

अपन्नी ने अँगुली दिखाकर बता दिया, "इस सीध में जो आम दिखता है— उसे झड़ा तो देखें!"

लोचन ने निशाना साधकर फेंका। किन्तु न आम झरा और न लकड़ी लौटी।

ढूंढ़-ढाँढ़कर वह एक और लकड़ी लाया। निशाना साधकर फेंका। अबकी फिर लकड़ी अटक गई!

अपन्नी और सेवती हें-हें कर हँस पड़ीं। नाक में सें-सों करती सुन्दरी भी फें कर हँस पड़ी।

लोचन का चेहरा लाल हो गया। आहत पौरुष और मान गुस्से में फूल उठे।

पागल की तरह दौड़ गया। चारों ओर देखा, मगर लकड़ी नहीं। आखिर गुस्से में एक और थोथी लकड़ी उखाड़ फेंकी। उसमें लतर वगैरह लगी थी, सो ऊपर तक पहुँच न सकी। चार-चार बार फेंककर एक भी आम नहीं झड़ा सका, उल्टे ठोकर खा गिर पड़ा।

इसी मौक़े पर वह बदला लेने बोल उठी, "तेरे हाथ से जूँ भी मरेगी? तेरे निशाना तो है ही नहीं। एक आम नहीं झड़ा सका, लाज नहीं आती?"

लोचन ने ज़रा गुस्से में सुन्दरी की ओर कनखियों से देखा। मगर बोला कुछ नहीं। फिर से लकड़ी फेंकी। इस बार भी नहीं टकरायी।

अब की सुन्दरी ने मौक़ा देखकर कहा, "हमारी गली के बना का निशाना देखा? वो होता तो एक ही बार में आम···झट से नीचे आ जाता। इस मुए में निशाना है या फिसाना!" फिर अपन्नी से कहा, "चल री···चलें! बकरी की टाँग से कभी खला (खलिहान) का काम होता है?"

अपन्नी ने हँसते हुए बात में हाँ भरी। जाते-जाते सुन्दरी मुँह फेर बोली, "खूब आम खाये आज सेवती जीजी! मैं बेहया···मेरे जैसी कोई और भी है?"

बात की धार लोचन की छाती चीर गयी। अब वह और सम्हाल न सका। गुस्से में बोला—

"जा···जा···अपने बना खसम के पास, वही तुझे आम तोड़ देगा। क्या आ रहा है मुँह में?"

सुन्दरी ने मुड़कर देखा। बात लग गई, मगर लोचन के संग कलह करने में छाती ने साथ नहीं दिया।

सुन्दरी को ऐसी दशा में देख अपन्नी उसकी तरफ़ लेकर गरमा-गरम सुना कर बोली—

"क्या बोला रे मरदूद! नरम लोहा बिल्ली नोचे! ठीक है तू गली में चल! तेरा दिमाग़ सही ठिकाने ला दूंगी मैं!" और फिर गुस्से में सुन्दरी को खींचती दमदमाती ले गई।

अगले दिन सुन्दरी के साथ लोचन की भेंट हुई। मगर एक-दूसरे से कोई बोला नहीं। अपनी आँख सुन्दरी की आँखों से मिलते ही, लोचन ने अनदेखी कर नज़र नीचे कर ली। सुन्दरी ने भी मुँह दूसरी ओर मोड़ लिया और दमकती चली गयी।

साँझ ढलती हवा के संग पकी धान समेटती सुन्दरी फिर उधर से लौट आयी। लोचन भी सुन्दरी को देखकर अनदेखी कर टीन बजाता ऐसा लगा मानो काम में बहुत व्यस्त है। लता के झुरमुटे के पास दोनों एक-दूसरे के आमने-सामने पड़ गए। राह छोड़ दूसरी तरफ चल पड़े। दिन जितना ही बीतने आया, दूरी उतनी ही बढ़ती गई, कम नहीं हुई।

कितनी बार इसी बीच लोचन ने सोचा—सुन्दरी को आवाज़ दूं, सिर छूकर सौगन्ध दूं कि फिर कभी नहीं रूठेंगे हम···मगर ना···ना नहीं···गले से बात निकलती ही नहीं···

छिः-छिः इस ज़रा-सी छोकरी के आगे सिर नवाऊँ !

खैर ! शुरू-शुरू में दोनों एक-दूसरे पर जैसे गुस्सा हुए थे, अब मन में वैसी, उतनी खराश नहीं रही। बात का फैसला करने को दोनों व्याकुल ! मगर पहले कौन बोले, कैसे बात करे, यही है रोड़ा। अब इन दिनों लोचन से भेंट होने पर थोड़ा हटकर छुपे-छुपे मुस्करा लेती। या फिर आँख में कुछ गिर गया है—इस बहाने पल्लू में मुँह ढाँप होंठों की हंसी दबा लेती।

बस्ती में वनभोज होता या भगवान गुसाईं की पूजा होने के बाद दोनों को एक साथ रहने की ज़रूरत पड़ती—किसी को बिचौलिया रख लेते और तब उस की मार्फ़त बात करते। लेकिन बोल जाने के बाद लाज से जीभ दाँतों-बीच रखनी पड़ती।

धान-कटाई के बाद खेत की पूजा होती। उस दिन सब मिल खूब ज़ोरदार रसोई पकाते, चूल्हा लगाकर भात पकाने का भार होता सुन्दरी पर। गीली लकड़ी न जलने पर वह लोचन को सुनाकर कहती, "मुई लकड़ी भी नहीं सुलगती। कोई फूस ज़रा-सा पकड़ा देता !"

इतने लोग हैं, मगर लोचन जाकर दो-चार गुच्छे फूस के ले आता। उन्हें फेंककर दीवारों से पूछने की तरह कहता, "और क्या चाहिए ?"

सुन्दरी को एक गगरा पानी चाहिए तो अपनी को उस की ओर धकेल कहती, "बोलना, गगरा भर पानी ले आये कोई ! मैं भात उतार रही हूं !"

इसी तरह दिन, माह, पखवाड़े और बरस भी कट गये ! "कहूं-कहूं" कहकर और किसी की बात नहीं बोल पाये। हालाँकि इसी बीच लोचन ने सुन्दरी संग बातचीत के लिए उसके मौसेरे भाई बिकला की खुशामद की थी। मगर बिकला ने बात खोल दी, अतः लोचन के साथ के लड़कों ने चिढ़ाना शुरू कर दिया। तब से लोचन ने ऐसी जगहँसाई वाला काम नहीं किया।

खुदरकुणी (एक देवी जिसकी पूजा कुँवारियाँ करती हैं) ! कितना बड़ा परब ! बस्ती की छोरियों के चेहरे पर हँसी ही नहीं ! हर बरस सुन्दरी वगैरह के लिए छोटी-सी देवी की मूरत बनाते समय लोचन की सहायता ली जाती। मगर इस बरस लोचन जान-बूझकर दूर-दूर फिरता रहा। हरताल, फूलखड़ी, सुनहली काग़ज़ आदि लाने के लिए कहलवाया। लोचन वो सब चीजें लाया भी। मगर हाट से लेकर किसी और के हाथ यथास्थान भिजवा दिया उन्हें। इस बार उसके चेहरे पर और बरसों जैसी मुसकान, रौनक या उत्साह ज़रा भी नही।

इस बरस खुदुरकुणी के समय पता नहीं क्यों, लोचन का मन बहुत ख़राब

रहा। हर बार देवी-पूजन कर लड़कियों के पोखर से लौट आने के बाद, लोचन जाकर घड़ी भर पोखर के घाट पर गुमसुम बैठा रहता। याद है, हर बरस इसी दिन मूर्ति-विसर्जन के समय सुन्दरी कैसे उसकी मदद माँगा करती थी। हर बरस बड़े पोखर के बीच तक धकेल देने के लिए सुन्दरी और उसकी सहेलियाँ लोचन से अनुरोध करतीं। लोचन पानी में आधा तैरकर हाथ-पाँव पटक जैसे-तैसे सबसे आगे तैरने की अपनी बहादुरी दिखाता। इतना ही नहीं, पूजा के पहले दिन सुन्दरी उसे पोखर के सारे कुँई तोड़ लाने की बात दो दिन पहले से ताक़ीद कर देती। कहीं दूसरी बस्ती के छोकरे पहले उठ फूल न ले जायें, अतः लोचन को वह रात बीतते-न-बीतते नींद से जगाकर तड़के ही पोखर की ओर भेज देती। और खुद भी उसके पीछे-पीछे एक खूब बड़ी लठगी लेकर निकल पड़ती।

इस तरह की पुरानी बातें याद कर लोचन का मन अन्दर-ही-अन्दर कैसे भी तो गोमाल करने लगता। आज अकेला पोखर के पानी पर तैरते हुए विसर्जित फूलों की ओर एक लय से देख रहा है।

पोखर के नीले पानी पर एक जली दिहूटी को गोद में लिये पिछली पारी का फूलों का बेड़ा तैर रहा था। दल मिल चीकट भरा पानी और उस पर मृत दिहूटी की छिलती छाया। लोचन उधर देखता खोज रहा है अपने जीवन के उलझे धागे में खोई एक लकड़ी का छोर।

कल पूजा की आखिरी पारी है। पूजा समापन होगी, भोर का तारा उगकर बुझ चुका है। काँटों की लतर के हरे पत्तों पर चाँदनी फीकी दिखने लगी है। चारों ओर खूब उजास भर रही है।

पोखर की पाल पर सुन्दरी अपने छोटे भाई बुरूँदा को लिये नहा रही है। संगी-साथिन नहा-धोकर जा चुकी हैं। चूड़ियों को जरा रगड़ते-रगड़ते कुछ देर हो गयी है।

लोचन उसी राह बँटाई वाले खेत पर जा रहा था उधर से। देह पर गीली साड़ी चिपककर उस पर अधबुझे चाँद की उजास में कुछ-कुछ धुँधली दिख रही है। पास बैठा है बुरूंदा।

पोखर में सहारे-सहारे खिले हैं बेशुमार कुँई। लाल, नीले, सफ़ेद—तरह-तरह के रंग की पोशाक पहन वे ताजा खिले फूल हवा में डोल रहे हैं।

लोचन को याद आया—पिछले साल इन्हीं दिनों लाल कुँई लाकर सुन्दरी के गले में डाले थे। और उन्हीं लाल-लाल फूलों को पाकर सुन्दरी के लाल होंठों तले मुस्कान की पतली लहर आकर लोट गई थी। वह धुँधली छवि आज लोचन के मन में फिर से रूप-रेखा बनाकर खिल उठी है। उसने सोचा—सुन्दरी हर बरस की तरह आज भी उससे फूल तोड़ने का अनुरोध करेगी। मगर सुन्दरी उसे देखकर भी गुम मारे रही। पल्लू थोड़ा और खींच मुँह की ओट कर लिया।

लोचन इधर-उधर कर सुन्दरी के भाई बुरूँदा से कहने लगा, "क्यों रे बुरूँदा, आज कुंई फूल नहीं लोगे ? कल तो व्रत है ! पूजा है !"

बुरूँदा कुछ न समझ सका। सुन्दरी ने फुसफुसाकर सिखाया, "पूछ तो, फूल हैं कहाँ ?"

बुरूँदा ने पूछा, "फूल कहाँ हैं ?"

लोचन ने कहा, "लेगा ?"

सुन्दरी ने फिर बुरूँदा के कान में फुसफुसाया, "कह—हाँ, दे !"

बुरूँदा ने वैसे ही कह दिया—"हाँ, दे···"

इतने दिन बाद किसी की मध्यस्थता में सुन्दरी की फरमाइश पाकर लोचन का मन खुशी से भर गया। थोड़ा मज़ा लेने बोला, "तू क्या करेगा ? तू क्या पूजा करेगा ?"

बुरूँदा की अकल चरख हो गयी। क्या जवाब दे, कुछ नहीं समझ सका, अपनी जीजी की ओर देखने लगा। सुन्दरी ने आखिर सिखाया, "बोल, मैं न करूँ तो क्या हुआ, जीजी कर लेगी पूजा ! जानकर यों भोला बनता है ?"

बुरूँदा ने वही बात कह दी। लोचन का उत्साह तो बस कुछ न पूछो ! कितने दिन बाद आज सुन्दरी ने फरमाइश दी है ! इस अवसर की तो आस ही न थी। मान में भर बोला, "मुझसे बिना बोले मैं भी फूल नहीं दूंगा।"

सुन्दरी ने बुरूँदा के कान में कह दिया, "तू पहले बोले तब तो कोई फिर बात करे !"

बुरूँदा ने तोते की तरह कह दिया—"तू पहले बोले तब तो कोई बात करे !"

लोचन बड़ी हैरानी में पड़ गया। सिर झुकाने को तैयार नहीं। फिर भी आज उसे बहुत खुशी हो रही थी। सोचा—कुंई फूल ला देने के बाद सुन्दरी जरूर बात करेगी, जायेगी किधर फिर ?

लोचन ने कच्छा कसा। पोखर के उत्तरी किनारे के पास घुटनों तक पानी है। वहाँ खूब कुंई खिले हैं। लोचन ने उन्हें तोड़ने को हाथ बढ़ाया।

सुन्दरी ने लोचन को सुनाकर ऊँचे स्वर में बुरूँदा से कहा, "इन गोबर कुंई का क्या करेंगे बुरूँदा ! हमें तो लाल कुंई चाहिए हैं !"

लोचन को सुन्दरी की इस परोक्ष बातचीत में भी पुलक लग रही थी। इसी में डूबा था मानो कोई आधा सुना आधा अनसुना चौपदी छन्द···कोई पुराना परिचित !

पोखर के बीच है लाल कुंई। डूबे चाँद के लिए सोचते-सोचते मानो उस फूल के नरम गाल पर जमा है कई दिन का दुख ! नीले पानी पर फूल की लाल-लाल छाया नाच रही है।

लोचन के मन का सारा दुख-दरद अपने आप कहीं लीन हो गया। कमर तक पानी में धँस गया। और सात-आठ क़दम जाये तब फूल हाथ आये। इतना सुन्दर फूल देख सुन्दरी का मन कैसे खुशी में खिल जायेगा—वह कल्पना भी पूरी नहीं कर पाया।

छाती तक पानी में उतर गया मगर हाथ नहीं पहुँचा।

लोचन ने कमर की धोती और कसकर बांधी और गले तक पानी में चला गया। दो हाथ दूर रह गया है। अँगूठे को छू लेगा—हाथ बढ़ाया।

किनारे पर सुन्दरी किलककर बोल उठी, "ले रे बुरूंदा तेरा फूल आ गया !"

इतनी दूर पर भी लोचन को सुनाई पड़ गया वह शब्द। आज कितने दिन बाद बादल छँटे हैं और मन में सूरज उगा है। उसने और एक क़दम बढ़ाया। यह फूल पाकर सुन्दरी ज़रूर बात करेगी, इसी सपने में वह विभोर हो उठा। फूल की ओर झुक गया।

आगे एक गड्ढा—लोचन डुबकी लगा गया। मगर लोचन को कुछ-कुछ तैरना आता है। दो घूंट पानी पीकर कुछ परेशान हो गया था। फिर भी तैर कर कुंई की नाल पकड़ ली।

फिर पूरा जोर लगा उसे खींचने लगा। एक बार, दो बार खींचा। मगर फूल सहज में टूटा ही नहीं। तीसरी बार खींचा तब तक लोचन का आधा दम टूट गया था।

अब की सारा ज़ोर एक साथ लगाकर दांत भींच आखिर एक बार और खींचा। फूल उपड़ आया। लाल-लाल सुन्दर कुंई फूल !

इसी बीच लोचन खूब थक चुका था। कुंई फूल पकड़ किनारे की ओर आने की कोशिश की, उसके हाथ-पांव अवश ! तभी उसे लगा जैसे उसके पांव कहीं फँस गये हैं। खींच-तानकर निकालने की चेष्टा करने लगा। मगर लगा किसी पतली डोर में बँध गये हैं। लोचन लाचार हो दो-चार गुपलकी खा चुका था।

तभी सुन्दरी ने किनारे पर बुरूंदा से कुछ कहा। उधर दो-तीन घूंटके पी चुका था तब तक वह। कुछ-कुछ होश था। किसी तरह पानी के ऊपर सिर कर चीखा, "सुन्दरी···ए···सु···न्द···" उसने सोचा, सुन्दरी उसके पास दौड़ी आयेगी।

मगर उसके मुंह में पानी भर गया, आवाज़ सुनाई नहीं पड़ी। सिर्फ़ गों-गों करता रहा। सुन्दरी ने सोचा—लोचन पहले बात करने के लिए ये खेल दिखा रहा है।

लोचन के पांव में कुंई का दल फँस गया था। छटपटा कर पांव पटके। कुंई का फूल भी हाथ से छूटकर पानी पर तैर रहा था।

लोचन नहीं ।

पानी पर सिर्फ़ फूल को तैरते देख वुल्दा ने कहा—

"ऐ जीजी ! देख तो लोचन भैया डूब रहा है !"

सुन्दरी ने उसे धकियाकर कहा, "धत्···कलमुंहा···छोकरा, आग लगे तेरे मुंह पर ! वो क्या तैरना नहीं जानता जो डूब रहा है ! कटी नहीं रे तेरी आग लगी जीभ !"



अँधारुआ

गले में हाड़। दांत में तिनका। जीभ रहते-रहते तुतलाना पड़ा पहली प्रधान को। घर-घर ठीकरा लिये फिरना पड़ा।

काले स्याह अँधेरे में अपनी मोटी-सोंटी बाँह ऊपर उठा गाँव के छोर वाली दुकान के पास बैठ पहली सबसे अपने मन की बात कहने की चेष्टा करता। तरह-तरह के दरदीले बोल निकाल गाहकों की जेब से पैसा-धेला झड़ाने का उपाय करता। कोई देता, कोई मुंह मोड़ चला जाता। अधिकांश उसकी ओर दाँत निपोर हँस पड़ते, चिढ़ाते। पहली माटी में लोटता। बाल बिखेरे, हाथ पसार बहुत कुछ कहता। सब कहते—"तमाशा कर रहा है।"

स्याह देह, गन्दे कपड़े, धँसी चौड़ी छाती, काली रात में मिलकर अलग से पहचान में ही न आती।

ज़िद्दी बच्चा दूध न पीये तो माँ डराती है—"देख-देख वो अँधारुआ आया। गाँव के नाके पर बैठा जीभ लपलप कर रहा है।"

पहली पुरुस्तम (जगन्नाथ पुरी का ही एक नाम) जाएगा। राह में साँझ होने पर उस ओर के गाँव में टिक जायेगा। सूरज डूबने से पहले दो-चार दाने मुंह में डाल किसी के बरामदे में दो टुकड़े पुवाल बिछाकर पाँव पसार देगा। वह जिस गाँव जाता, उस गाँव में 'अंधारुआ आया, अँधारुआ आया' चारों ओर शोर मच जाता। उसके पीछे छोकरे ताली पीटते, दौड़ते। आवारा कुत्ते भी हाउ-हाउ कर भौंकते, फिर सूं-सां करते पावों में दुबकते, उसे सूंघते।

अँधारुआ रोज दिन भर चलता। और फिर साँझ ढले भीख माँगता।

अँधेरी रात। थुल-थुल पेट किसी औरत की तरह काला पड़ झूल आया है। उसी में चलते-फिरते अँधेरे की तरह लाठी लिये अँधारुआ चलता रहता···

कभी-कभी अँधारुआ सपना देखता—

पके खेत में लहरा रहा है धान। चोखे-चोखे धान के पौधे बेशुमार! क्यारी की रेख में साँप, बिच्छू और तिलचट्टों का मेला लगा है। चारों ओर आमिषी

गन्ध पाकर चील भी झुण्ड के झुण्ड उड़ रही हैं।

उसी घने अँधेरे में मचान बना कर खेत के बीच एक जगह आग जलाए पहली रखवाली कर रहा है।

धान की जड़ों में जमा है ढेर की ढेर खाद, खाद नहीं हाड़ हैं। पहली के हाड़—उसकी स्त्री गेली के हाड़···

पहली को याद आता है—घोर ठण्ड के दिनों में भी कैसे खूब तड़के अँधेरे-अँधेरे केवटों के घर चिवड़ा कूटने की आवाज सुनते-न-सुनते गेलीवहू थरथराती गली, रास्ते, कुरी, अमराई, नाले तक घूम-फिर टोकरी भरकर गोबर चुग लाती और पिछवाड़े में ढेर कर देती···। और पहली अपना खून-पसीना बहाकर खाद को कूट-कूट कर चूरा करता, ले जाकर खेत में बिछा आता···

इतना ही नहीं, पत्थर-सी सख्त खेत की माटी में हल पकड़ चलाता तो कितना कष्ट होता, याद आने पर पहली के भीतर गहरे तक सिहरन दौड़ जाती। सिर पर आग के लौंदे की तरह सूरज, नीचे तपती-जलती माटी—दोनों पैर जलकर परत-दर-परत छिलके उतरते···

पहली की इतनी हाड़तोड़ खून-सनी मिहनत को सार्थक कर जिस दिन पके खेत में बेशुमार धान के पौधे लहरा कर हवा में आँख-मिचौनी खेलने लगे, उस दिन पहली के जीवन में बड़ा महोत्सव हो गया। सब-कुछ भूलकर वह देखता रहा अधपकी क्यारियों की ओर···।

उसके बाद, एक दिन···

पहली सोच रहा था—

स्याह अँधेरा। मँगसिर की सिरसिराती हवा कलेजे को थर्रा रही है। पहली मचान पर एक कन्था ओढ़े चित लेटे बटुए से चूना और तंबाखू का पत्ता हथेली पर मल रहा है। खेत में कोई चबर-चबर आवाज आयी, पानी की कीच में धान के पौधे रौंदता कोई चारों ओर मानो फिर रहा है। पहली ने सोचा, कोई वराह या भालू होगा!

गुस्से में लाठी थाम कर खड़ा हो गया।

धान के पौधों की सांवली-सी कतार को चीरती पानी की लकीरें चमचमाती दिख रही हैं, घने अँधेरे में पहली की आँखों में पड़ गया खूब बड़ा काला-कलूटा जन्तु! नासा से उंचास पवन निकल रहे हैं।

पहली उसके पीछे-पीछे दौड़ा। मगर वह काली छाया धान के पौधों को कूदती-रौंदती, दौड़कर भाग गयी।

धान का एक भी पौधा रौंदा जाता तो पहली की देह का अँजुरी भर खून सूख जाता।

आगे है एक गड्ढा। वह और आगे न जा सका, मुंह फिरा कर लौट आया।

पहली की लाठी जा लगी उसके सिर पर—ठीक बीचों-बीच ।

पहली ने बिजली की चमक में देखा—दो बड़े-बड़े पैने सींग ऊपर की ओर सीधे चले गये हैं ।

पूंछ उठा कर फनफनाता जन्तु एकदम घबरा कर भाग छूटा । पहली ने देखा वह कुछ दूर जा कर कांटों के झुरमुटे में धड़ाम से गिर पड़ा । और फिर कीच-गारे से उठ ही नहीं सका ।

पहली मचान पर आकर चैन से सो रहा । रात में लेटे-लेटे सपना देखा—कोई विशालकाय कंकाल···उसे गीध-कौए घेरे हुए हैं । एक गीध उस लाश की नाभि में चोंच धँसा रहा है । लाश के चारों खुर किसी ने काट डाले हैं, कुल्हाड़ी से ।

पुरोहितजी ने पोथी देख बताया—

"तीन पाद दोष लगा है ! पुररतम (पुरी) जा कर मुक्तिमण्डप की सभा के आगे प्रासचित किये बिना पातक नहीं छूटेगा । प्रासचित न होने तक मुंह में तिनका रखोगे, किसी से बात नहीं करना !"

गाँव भर में फुसफुसाहट चली—"पहली को मुसकिल है ! गोहत्या कर डाली !"

उस दिन का पहली । आज का अँधारुआ ! कितना फरक है !

पहली सोचता—उस दिन पदुमपुरान बाँच कर पुरोहितजी महाराज निधी मिस्सरजी ने क्या-कुछ बताया ! डर से चेहरा फीका पड़ गया । आँखों के आगे तैर गया—जलती आग का चूल्हा—बड़े-बड़े हण्डे, तेल उबल रहा है ! इधर-उधर देखा । थर्रा गया, फिर आँखों में तैर गए भैंसों के मुंह-जैसे दो जमदूत ! उन्हीं का चित्र तो पण्डितजी महाराज दया कर पुरान से टिमटिमाते दीप के उजाले में दिखा रहे थे ।

तीन-रंगी वह फोटो याद आयी । कितनी बड़ी-बड़ी आंखें, कैसे सींग, हाथ मानो बन्दर की तरह रोंयेदार, नाखून पैने-पैने ! वह बच्चों की तरह नींद में बिलबिला उठा—

"आया···वो···आया···लो···"

कभी-कभी राह-चलते सूनी दोपहर में थक कर पेड़ के नीचे बैठ जाता । चारों ओर सुनसान ! उसे याद आयी नीचे वाले गाँव के रामा गौड़ की बात । गो मार कर छुपा दी, पर मरा तब जीभ में घाव ही घाव हो गए, कीड़े पड़ गए, मुंह में कलबलाने लगे । कितना गू-मूत, ख़ून-मवाद हो कर सड़-सड़ कर रहा ! फिर भी क्या प्राण गए ?

आखिर बस्तीवालों ने पूछा—

"क्यों रामा, क्या किया है ? बोल दे ! वरना सहज ही परान नहीं छूटेंगे !"

रामा मान गया। गाय मारी थी ! हिचकी उठी। तीन बार गाय की तरह रंभाया और प्राणवायु उड़ गई······

इस के आगे पहली सोच नहीं पाता। उसे सुनाई पड़ता, कोई मरखनी गाय खूब दूर पर रँभा रही है। डरकर वह पेड़ को कस कर बाँहों में भर लेता···

शायद पास ही दो-एक गायें चर रही हैं। धौरी, कजरी, मटियाली और उन की बछियाँ कूदती चारों ओर फिर रही हैं। पहली को लगा, सींग उठाये उसे ही मारने आ रही हैं। लाठी ले कर उतर पड़ा···घबराई आँखों से इधर-उधर देखा।

कभी-कभी पहली सपना देखता—कोई मरी काली गाय पेट फुलाए आँगन में पड़ी है, पेट में छोटी-सी बछिया है। गेली वहू चौंतरा के पास बैठी चुपचाप रो रही है, और उस का मरा बच्चा फिर जी गया है। वह बापू-बापू किलकता उसे पुकार रहा है। पहली की नींद झप से टूट जाती। उठ बैठता। उसे लगता, जैसे दूर सूँ-साँ करता कोई चर रहा है।

कभी-कभी राह-चलते पहली थक कर खड़ा रह जाता। उसे लगता, पीछे से कोई आवाज़ दे रहा है। पैने-पैने सींग—हाथ में फाँस बनी रस्सी ! उसे याद आता रामा गौड़ का चेहरा। खून-मवाद और पुछल्ले कीड़े ! मन को समझाता—फिर अपनी राह चल पड़ता। दस बार दस-दस नाम ठाकुरजी के, जगदीसजी के लेता।

पुरी वड़ दाँड (मन्दिर के आगे का प्रशस्त चौड़ा पथ)। सैंकड़ों कोढ़ियों के बीच पहली भी हण्डी का टुकड़ा लिये भीख माँग रहा है। वड़ देवल (जगन्नाथ मन्दिर) पर ठाकुरजी की लम्बी तीन मोड़ की ध्वजा फहरा रही है। पहली एकटक उधर ही देख रहा है। उस के मन में, बड़ दाँड पर पैर रखा उस दिन से, थोड़ा साहस आया है। अब वह पहले की तरह न बड़बड़ाता है, न भयंकर सपना देख चौंकता है। पास लेटी कोढ़ के रोगवाली औरत पूछती—"तू कितने दिन हाड़ रखेगा बाबा?"

पहली अँगुली पर गिन, अँगुली दिखा कर बताता, "सात दिन !"

सात दिन बाद वह गाँव लौट आया, गेली की माँ के सिलवर के बने हाथ के कड़े, बरतन-भाँडे बेच-बाच कर पाँच रुपये अण्टी में रख पुरुतम गया था। वह घर भर की चीजें बेच, अब पुरस्तम में पातक छुड़ा आया।

एक महीना इक्कीस दिने पूरे हुए। पंचगव्य ले कर, बाम्हन भोजन करवाया; मुक्तिमण्डप के महापुरुषों को कुछ-कुछ दे-दिला कर उन की चरन-धून्न और आशीर्वाद ले कर घर लौटा था। आया तब गेली बहू के लिए महापरसाद का कुडुया (पके चावल की छोटी एक हण्डी और सूखे निर्माल्य (महाप्रसाद का भात सुखाकर उसकी छोटी-छोटी पोटली बनाई जाती हैं) की पोटली भी लाना ज़रा-सा न भूला था। लौटते समय उसके पाँव ज़मीन पर टिकते ही न थे, मन खुशी में

उछल रहा था ।

उतरती साँझ के नीम अँधेरे में गाँव पर हलका झीना परदा पड़ रहा था कोई। गाँव के सिरे पर महुए के पेड़ पर मधुमक्खियों की साँझ की सभा चल रही थी। गेली वहू अपना भूखा मुंह साड़ी के आँचल में ढाँपे तुलसी-चौरे के पास संझादीप जला सिर झुका रही थी । पीछे से पहली ने आवाज़ दी, "घर में सब ठीक-ठाक तो है गेली वहू ?"

गेली की माँ ने जो जवाब दिया, पहली का तो हलक सूख गया ! घर लौटते समय की हंसी-खुशी पलक झपकते ही कहीं उड़ गई ।

"घर में एक पखवाड़ा हुआ चावल नहीं, माँडिया छेरी खा गई । तीन दिन हुए···जो शीत के दिनों वाली झड़ी शुरू हुई···उस में रसोई की भीत ढह गई। और जो खेत में धान पैदा हुआ···जमींदार जी महाराज ने, पुरस्तम जब तुम गए, पीछे से उसे अगले वरस लगान के वावत जवत कर लिया···अव पिछले वरस का लगान महीने भर में दाखल न किया तो फिर घर-बार कुड़क कर देने की धमक दे गये हैं ।"

सिर पर हाथ दिए वह सब सुन गया । कुछ नहीं कहा । पुरी से लाया प्रसाद लेकर रात दोनों ने किसी तरह काट दी ।

सुबह देखा, चूल्हे पर चढ़ाने के लिए चावल नहीं, साग-तरकारी की बात तो दूर । रसोईघर की भीत ढेर हुई पड़ी है । एक कोने में दीमक की बाँबी खूब बड़ी हो गई है । हाँडी-कुण्डी दो-चार जो थीं, सब भीत के गिरने से चूर-चूर हो गई हैं । घर में ठीकरे पड़े हैं । पहली दो महीने पुरस्तम में पड़ा रहा—घर में छदाम-कौड़ी भी नहीं रही । गिरवी रखने के लिए जो दो-चार बरतन-भांडे थे—सब बेच-बाच पुरी से गोहत्या का पातक छुड़ाने गया था । बाक़ी रहा क्या जिधर हाथ बढ़ाये ? लुगाई के हाथ में बस शंखा (सुहाग की चूड़ी) एक-एक हैं—वो भी दिनों-दिन ढीली होती जा रही हैं ।

सुबह पहली को देख गाँव के बाम्हन दौड़े—भोज देना होगा ! गाँव के बाम्हन शुद्ध न करें तब तक भला पातक छूट सकता है ? ज़मींदार का प्यादा आकर दुआरे बैठ गया । पिछले वरस का लगान दो, नहीं तो सामंतजी मुकदमा करेंगे । जात-भाइयों ने पकड़ा—जात-बिरादरी को खिलाये बिना शुद्ध कैसे होगे ?

पहली निकला मजूरी करने । मगर पौष का महीना, धान कटाई के बाद काम कहाँ से आएगा ? फिर उसने देखा—गाँववाले उसे देख नाक-भौंह सिकोड़ लेते हैं । एक ने तो उसे सुना कर कह दिया—"गो-मारक को छूने में ही पाप लगेगा ।" तब से पहली सरक कर रहने लगा । किसी से आगे बढ़ मेल-जोल नहीं करता ।

जात-बिरादरी को भोज दिया नहीं। पहली को जाति से बाहर कर दिया। बाम्हन गुसाईं लोग अड़ गए। धोबी, नाई, आग-पानी सब बन्द ! पहली को अकेला कर दिया।

सागवान-सी कद्दावर देह देखते ही देखते आकर काँटा हो गई। गेली वह भी फूंक दो तो गिर पड़े। बस हाड़ों का ढाँचा भर दिखता है। स्त्री को उसने उसके पीहर भेज दिया।

पहली के यहाँ एक दिन चूल्हा जलता तो दो दिन सीधा उपवास ! दुकान-दार, धोबी साहूकार सबने देन-लेन बन्द कर दिया। पहली को कुछ नहीं सूझता।

दुख, अभाव, हानि वगैरह सहते-सहते पहली का मगज बिगड़ गया। पुरुत्तम क्षेत्र में इतने पैसे खरच कर जो काला दाग मन से मिटा आया था, फिर से उभर कर मन में रेख खींच रहा है।

पहले की तरह फिर वे ही भयंकर सपने···कभी-कभी चौंक उठता वह। उसे लगता जैसे काला-कलूटा कोई जन्तु सूं-साँ करता उसके चारों ओर चरता फिर रहा है। वह रातों में सपना देखता—कोई मरखना बैल मानो सींग घोंपने के लिए पूंछ उठाये उधर ही आ रहा है। सपने में चीख उठता—"वो···वो···आया घोंपा··· भागो, सींग घोंप देगा···"

पहली का सब-कुछ जाकर बचा था टूटा-फूटा यह घर। वह भी लगान न देने पर नीलाम में उठ गया। इतनी बड़ी दुनिया में सिर छुपाने को कहीं दो गज धरती नहीं रही। घर नीलाम होते समय वह टिमटिमाती निगाह से देखता रहा। मुंह में शब्द भी नहीं रह गये थे। जब बता दिया गया उसे कि अब वह इस घर में नहीं रह सकता, चुपचाप उठकर खड़ा हो गया। एक सब्बल उठायी और पिछवाड़े के कमरे को खोद, मरी हुई गेली के जनम के समय की छठ-पूजा वाली सामग्री ले आया। रसोई में पूर्वजों की पूजा-वेदी को भी खोद लाया। धीरे-धीरे घर छोड़ बाहर निकल आया। बस, उस दिन से दुबारा वहाँ नहीं लौटा।

बाप-दादों के ज़माने का घर चला गया—पहली के मन की हालत खराब हो गई। इस वक़्त यहाँ, उस वक़्त यहाँ···इसी तरह दिन कटने लगे।

घर के बीच खड़े सहिजन के पेड़ से पहली को बहुत प्यार था, ढेर की ढेर राख उसकी जड़ में उँडेली है उसने। सहिजन में गुच्छे-के-गुच्छे फली होतीं, दो-एक तोड़ पखाल भात के साथ खाने के लिए सहज ही उसका हाथ नहीं उठता—चाहे नीचे गिर जातीं वे। इसी की छाया में बैठ कितनी चाँदनी रातें कटी हैं ! बाहर खड़े होकर कभी-कभी पहली उस पेड़ की ओर देखता—उसके तले जाने का बहुत मन करता, पर वह लौट आता। ज़मींदार का चौकीदार उसे देख हँसी करता—"क्यों रे गोहत्यारे, पहली !"

पहली को याद आता—घर की पिछवाड़ी में खूब-खूब कनसिरि (एक तरह

की हरी सब्जी) फैल गई होगी। कुएँ की बगल में वह सदाबहार का गाछ और गोड़ीवाण (एक तरह का फूलों का पेड़) फूलों से लद गए होंगे। मन कहता—चल, ज़रा एक बार जी भर देख तो आयें!

टूटी छाती में कोह उठता। उसका मन किरच-किरच हो जाता। देखते-देखते पता नहीं कितने भयावने सपने देख जाता। हड़बड़ा जाता। उसे लगता, इसी बीच वह पता नहीं कब मर चुका है।

× × ×

घर नीलाम होने को महीना भर ही हुआ होगा, बस्ती वाले बतिया रहे थे—पहली पधान पगाल हो गया है। गू-मूत भरा इधर-उधर फिरता रहता है। आदमी को देख कर कहता है—"आया रे आया···घोंप देगा, घोंप देगा···होशियार!"

डूंगर की ओर ईंधन चुगने कुछेक बाबरानी छोकरी गयी थीं।

वे साँझ-ढले धोबी साहू की दुकान के पास बतिया रही थीं—"पहली बैठा है डूंगर पर! बस, बैल की तरह चीख रहा है, कहता रहता है—"वो आया··· आया···कैसे सींग हैं! सूं-साँ कर रहा है! मैं तो मर गया! मिट गया महाराज!"

सब कुछ सुन निधि जी मिस्सर बोले, "उसका पाप उसे देखेगा, जायेगा कहाँ? शुद्ध हुए बिना भी कहीं गोहत्या का पाप छूटता है? हजार कहा—हमारी बात तो उसे सड़ी हुई लगी, दस-पाँच रुपये खरचने की ही तो बात थी—बाम्हन भोज करा देता—शुद्ध-पूत हो जाता। आज वह चैन से बैठा होता। धर्म कहीं उठ गया है?"

परीक्षित ब्रह्मा ने कहा, "आजकल कोई सास्तर-पुरान की बात मानता है मिस्सरजी? देखो तो, मरते समय कैसे गौ की तरह चीख़ रहा है! उसका अब समय आ गया। पाप खड़ा उसे दिखाई दे रहा है सामने।"

उस उजाड़ पहाड़ पर पहली का कंकाल। किसी भयंकर कल्पना की प्रेतात्मा उसके मन पर लम्बी-लम्बी छाया फैलाकर दबोचे है! उससे उद्धार कहाँ? उसके साथ जुट गई है दिनों की भूख, प्यास, अभाव, दुख-दर्द और अपमान। सब मिल उसके मन को चूर-चूर कर पीसे डाल रहे हैं।

पहली देख रहा है—उसके आगे घर-बार, स्त्री-परिवार, जान-पहचान के कोई नहीं। सिर्फ़ खाली सूना-सूना···। और कोई बड़ी भरकम पोथी—पन्नों पर उसके छपी है बड़े-बड़े यमदूतों की फोटो—काली-काली आँखें, पैने-पैने सींग। उस पोथी के अक्षर एक-एक घर्राती चक्की···

पहली को लगता है—मैंने गो-हत्या नहीं की है। मैंने ख़ुद अपने गले पर छुरी चलायी है···

पहली के अचल-स्तब्ध मन में और कोई हलचल नहीं। चारों ओर से कोई

रौंदता-रौंदता लगता है। चारों ओर उजाड़ लग रहा है···

बेंत के झुरमुटे से ढीठ कौआ कांव-कांव करता जा रहा है। वन-जंगल, डूंगर की चोटी—सब उसे मानो ज़िन्दा आदमी की तरह बार-बार कानों में पुकार रहे हैं—आ-आ-आ···

पहली ने देखा, निचले गांव वाले रामा गौड़ (गाय चराने वाले) की लाश। उसके मरे चेहरे पर ताजा हंसी दिख रही थी उसे।

और दूर पर सूं-सां करता कुछ चर रहा है!

पहली डर कर चीखता-सा बेहोश! एक नुकीले पत्थर पर पछाड़ खाकर गिर पड़ा।

अगले दिन पतर बीनने वाली छोकरियों ने गांव में जा कर बताया, "पहली हांफ-हांफ कर थूक में लथपथ पड़ा है! अभी या कुछ देर में बस···"

बकरी चराने वाला नोका बस्ती में जाकर कहने लगा, "पहली को घेरे दो जमदूत बैठे हैं। उनका मुंह एकदम बैल की तरह है! पछाड़ खायी···वे लौट गए!"

गांव के दो-चार गावदी जवान पहुंचे वहां। जाकर देखा—एक पत्थर के बीच सिर छुपाये पड़ा है। खोपड़ी का एक हिस्सा उड़ गया है—दही बह गया।

खबर पाकर गेली की मां उसी रात लौटी। अपने घरवाले को शुद्ध करने, गोहत्या छुड़ाने की खातिर पीहर से कुछ रुपये-पैसे लेकर आयी थी। उसी रात पहली के पास लिवा जाने के लिए कुछ लोगों से उसने निहोरे किये। मगर इतने बड़े गांव में कोई भी आधी रात गए डूंगर की ओर जाने को राजी नहीं हुआ।

भोर तड़के गेली की मां उधर चली। बावरानी छोकरियों से खबर मिली—पहली मर चुका है। मुंहझाग से भरा है। आंखें धंस गई हैं···कान के पास खोपड़ी का टुकड़ा किरच-किरच हो गया है।

उसकी आंख के आंसू मर गए। बस टिमटिमाती उधर देखती रही वह।

बिना शुद्ध किया हुआ मुरदार!

कैसे कोई उठाएगा? गांव में तरक-बितरक चला जोरों से।

गेली की मां ने अपने घर वाले को शुद्ध करने के लिए पीहर से लाये रुपये पल्लू से निकाल कर गांव के मुखियों के हाथ में बढ़ा दिए—लम्बी पसर कर सब के पांवों में पड़ गई।

बाम्हन गुसाईं जी महाराज और जात-बिरादरी के लोग सब खुश होकर पहली की लाश को ढेर-की-ढेर आशीष दे रहे हैं।

•

राजकुमार

खूब ऊँची दीवारों से घिरे महल मे राजकुमारी बन्दी है। सिंहद्वार पर झुण्ड-के-झुण्ड जवान पहरे पर तैनात हैं।

कुण्डली देखकर ज्योतिषी ने महाराज को बताया है कि यह कन्या उनकी घोर मानसिक अशांति का कारण होगी। अत: राजा ने गढ़ से बाहर घोर जंगल में एक महल बनवा कर राजकुमारी को वहाँ बन्दी के रूप में रखा है, बचपन मे ही।

बाहर से चिड़िया तक राजकुमारी की छाया नहीं देख सकती। इसके लिए चारों ओर कड़ा पहरा और लोहे की तरह अभेद दीवार खड़ी की गई है। दल-के-दल जवान सिपाहियों पर नजर रखने को बूढ़े सरदार पहाड़सिंह को नियुक्त किया गया है···जिसकी छाती में हाथी का बल है, जिसकी आँख बघनख की तरह पैनी और तीखी!

राजकुमारी का मन उदास है। दु:खी मन बैठी-बैठी वीणा बजा रही है।

अवंती के राजकुमार शिकार के लिए गये थे। थके हुए वह एक तालाब के किनारे जंगल में विश्राम कर रहे हैं। पास ही घोड़ा बँधा है, धनुष को कन्धे से निकाल कर नीचे रख दिया है।

राजकुमारी की दर्दीली आवाज़ हवा में तैरती, तालाब की लहरों पर फिसलती हुई धरती पर आ टकराती है। राजकुमार चौंक उठते हैं।

जनहीन इस जंगल में नारी की करुण आवाज़! राजकुमार उस आवाज़ का पीछा करते-करते जाकर फूलों से घिरी ऊँची दीवार से ढँकी अट्टालिका के आगे जा पहुँचे।

झरोखे के नीचे होकर देखा—राजकुमारी उन्हें ही महल पर से देख रही है। आँखों में अनकहा संकेत—होठों पर करुण मुस्कान का इशारा।

तभी अपनी आँख के काजल-मिले आँसू से भोजपत्र पर कुछ लिख राजकुमारी ने वहीं फेंक दिया नीचे की ओर। इसी में उसने अपनी सारी बात लिखी थी।

राजकुमार ने धनुष सँभाला और घोड़ा छुटाया सिंहद्वार की ओर। सरदार पहाड़सिंह बैठा चरखे पर सूत कात रहा है···सिपाही दुपहर में थक कर इधर-उधर

सो रहे हैं। इस सुनसान राजमहल पर किसी शत्रु की आशंका कभी उन के मन में आयी ही नहीं।

राजकुमार के घोड़े की टाप सुनकर बेखबर पहरेदार चौंककर खड़े हो गये। सरदार ने सींगा फूंका। सिपाहियों ने हाथ में बरछे उठा लिए।

राजकुमार ने धनुष पर दो तीर साधे। और फिर सरदार की आँखों को निशाना बना कर छोड़ा। सरदार हुंकार भर कर नीचे गिर पड़ा। सैनिक की संगीन की तरह हिंस्र उन आँखों से बह आयी खून की धार···

सिपाही बरछे लिए दौड़े राजकुमार की ओर। मगर राजकुमार तब तक घोड़ा दौड़ाते हुए बिजली की तरह अन्तर्धान हो गये। फिर मुड़कर एक-एक सिपाही को तीर का निशाना बनाते गए···जैसे कोई पेड़ काट गिरा देते हैं। बाक़ी जो रह गये, उनमें से कुछेक ने राजकुमार को घेर लिया और उन्हें मारने के लिए बरछे उठा लिए।

दर्शक डर के मारे स्याह पड़ गए। राजकुमार जीवन-मरण के बीच खड़े हैं। वेहला वाले ने तार पर एक करुण मूर्च्छना छोड़ी। एक बरछी आकर राजकुमार की दाहिनी भुजा पर पड़ी। जो तमाशा देख रहे थे, उनकी पलकें आँसुओं से बोझिल हो आईं। राजकुमारी ने भी आँचल से आँखें पोंछीं।

राजकुमार के तूणीर से एक और तीर निकला। लालटेन और मशाल की रोशनी में वह झलमला रहा था। सिपाहियों का आक्रमण और पास आता जा रहा है।

ठीक तभी तिरछे मुड़ कर राजकुमार उनके घेरे से निकल आये। एकदम पास वाले सिपाही के सिर पर तीर छोड़ दिया। उसके गिरते ही राजकुमार ने तलवार खींच ली। बिजली की तरह बाक़ी बचे सैनिकों को गाजर-मूली की तरह काट कर छिन्न-भिन्न कर दिया। कुछेक जान बचा कर इधर-उधर भाग खड़े हुए।

सबकी आँखों में आशा घिर आयी। राजकुमारी ने आँसू पोंछते-पोंछते देखा—तीर से घायल सिपाही नीचे पड़े लोट रहे हैं धरती पर। क़िसी की जीभ निकल आयी है तो किसी की तालु में धँस गई है, और राजकुमारी वरमाला लिए वहाँ लकड़ी के मंच पर से धीरे-धीरे उतर रही है। सबकी सहानुभूति राजकुमार के साथ है। सब उन्हें धन्य-धन्य कह रहे हैं।

बावली बस्ती के नकुला ने राजकुमार का भेष बनाया था। पाउडर में पुता उसका गोरा चकचक करता चेहरा, माथे पर सोने का मुकुट, देह पर ज़री की पोशाक ठीक अवन्ती के राजकुमार जैसी फब रही थी।

भरत-लीला समाप्त··· ! तमाशे का भेष उतार अपनी बिदकी लेकर सब अपनी-अपनी राह चले गए।

अगले दिन दुपहर का समय। धू-धू जलती ज़मीन। पेड़-पौधे, लता-पत्तर सब धूप में जल रहे हैं। राजकुमार हल लिए खेत से लौट रहा है, उसके गोरे चेहरे पर पाउडर नहीं है। दिन भर धूप में बिना खाये, तपते-तपते उसकी देह ताँबई पड़ गई है। फूले गालों से पसीना चू रहा है टप-टप, कमर में सँकरी धोती का कच्छा मारे चला आ रहा है।

राजकुमारी अपने काका के लिए काँसे के कटोरे में भात लिए जा रही है।

गाँव के छोर पर अमराई में भेंट हो गई। नकुला लाठी का सहारा लेकर कुछ क्षण खड़ा रहा। राजकुमारी बोली, "राजकुमार !" और फिर हँस कर अपनी राह चल पड़ी। राजकुमार लौट आया अपने मालिक के घर की ओर।

राजकुमार के दिन किसी तरह कट जाते। सवेरे माँड में नमक डाल काँसे का कटोरा भर गले से उतार लेता और लाठी उठाकर खेत की ओर चल पड़ता। दिन भर खेत की माटी में देह मिलाकर वह काम करता। पिंजर के हाड़ों-तले कभी तिल्ली में दर्द होता या भूख से छटपटा जाता तो खेत की मेंड़ पर आकर जा बैठता। उधर मालिक अपना छाता लिए, खेत के पास आम-तले खड़ा पहरा देता है। आवाज़ आती है—"क्यों रे···बैठ गया ! पेटराम काँसे का कटोरा भर तो भात ठूँसे है, काम हो तो कैसे ?" खेत से लौट सूखी देह पर थोड़ा-सा पानी उँडेलकर, मुँह में जूठा भात डालकर राजमहल की औरत कहा-सुना काम करती है। महारानी के पान-सुपारी से लेकर राजकुमारी की भालकुणी (मंगलादेवी) की मूर्ति बनाने के लिए जोहड़ से चिकनी मिट्टी लाने तक हर काम करना पड़ता उसे।

दिन ढलते ही वह खेत पर चली जाती है। साँझ को थक कर बैलों के लिए सानी-पानी करती। गायों को चारा देती। घर के और भी पाँच काम करती।

सुबह से साँझ तक इस निरानन्द जीवन-चर्या में उसके सुख के भी कुछ पल हैं या नहीं, कोई नहीं जानता। नकुला का बाप साहूकार से करज लाया था, वह रुपये न चुका सका तो बेटे को पाँच बरस के लिए बिना तनखा के बेच दिया। इन पाँच बरसों में मेहनत कर राजकुमार को पितृ-ऋण चुकाना होगा।

राजकुमार के इस रोज़मर्रा के जीवन में कभी-कभी कोई मीठा सपना जाग उठता। हर रोज़ उसी दुर्लभ क्षण के लिए वह प्रतीक्षा करता।

साँझ को रोज राजकुमारी लकड़ियाँ चुग कर लौटती। लकड़ी का गट्ठर घर में फेंक, मटका ले कुंए की ओर चल पड़ती। तभी राजकुमार हल लिए खेत से लौटता। पोखर के किनारे बैल हाँक वह हाथ-पाँव धोने लगता। घाट के पत्थर पर खड़ी हो राजकुमारी मुसकाकर कहती—"राजकुमार !"

बस यही सुनने के लिए नकुला का मन फिर काम में नहीं लगता। सूरज-देव के डूबने के साथ-साथ हल की कीली पर से हाथ ढीला पड़ जाता। हल्की-

सी साँझ दिखते ही बैल खोल देता और खेत से लौट पड़ता।

कभी-कभी साहूकार इतनी जल्दी बैल वापस लाने पर टोकता, सात पीढ़ी को कसकर गाली देता। दस तरह के बहाने बनाकर नकुला साहूकार को समझा देता। कभी कहता, "दहनावत बैल को वींगी (एक तरह का रोग) हो गया है।" कभी कहता, "सामंताइन के पान की खातिर सुपारी लानी है, थोड़ा पहले जा कर ले आने की ताक़ीद की थी उन्होंने।"

उस दिन शोखी में पूछा राजकुमारी ने, "राजकुमार! तेरी राजकुमारी कहाँ?"

नकुला ने बुद्धू की तरह कह दिया, "ना जानूँ।"

किनारे पर चाँदनी झलमलाती पानी पर तैर रही थी। राजकुमारी ने पूछा, "तू कहीं से ले क्यों नहीं आता? तेरी देह की हिफ़ाज़त रखता है कोई? सदा क्या कुँवारा ही बना रहेगा?"

राजकुमारी का मन जानने नकुला बोला, "तू मेरी राजकुमारी बनेगी?"

राजकुमारी झेंप कर मुसका उठी। झटका लेकर झलमल करती चल पड़ी। नकुला भी पीछे-पीछे हँसता हुआ चल दिया।

× × ×

नकुला को बुखार। सारी देह जल रही है तवे की तरह। उधर साहूकार के गुस्से की सीमा नहीं।

कई दिन से काम-धाम चौपट पड़ा है, खेत में रेख भी नहीं खिंची।

नकुला की समूची काया दरद कर रही है, हड्डियों की गाँठ पर अन्दर जैसे कोई बिच्छू हर पल अपना डंक मार रहा है। नकुला बेहोश-सा पड़ा है। मुंह पर दो बूंद पानी देने वाला भी कोई नहीं। साहूकार कहता है—"स्साला नखरा कर रहा है!"

आठ दिन हुए, राजकुमारी पोखर पर नकुल को देखे बिना लौट आती है, मन में दुःख है, राजकुमार कहाँ···?

कुछ दिन और बीते। नकुला की देह में चेचक निकल आयी। पहले छोटी-छोटी, और फिर खूब बड़ी-बड़ी। साहूकार और साहूकारनी दोनों घबरा गए। बाल बच्चों का घर, कब क्या हो जाय!

ज्वर व चेचक के कोप में जब वह अचेत था, एक दिन साहूकार ने कहा, "तू अपने घर चला जा। यहाँ कौन देख-भाल करेगा? बाल-बच्चों की बात है, कब क्या हो! समझे! और फिर पराया पूत···भले-बुरे की आफ़त कौन सिर पर ले?"

नकुला उनकी बात ठीक से समझ नहीं सका। सामन्त ने दुबारा ऊँची आवाज़ में सब समझा दिया, इतना ही नहीं, दया करके नकुला को रास्ते के जेब-खरच के लिए चार पैसे भी दे दिए। "देह ठीक होते ही यहाँ चले आना।" ताक़ीद कर दी।

दो कोस है नकुला का गाँव यहाँ से। हिल-डुल भी नहीं सकता वह।

साँझ को लौट कर साहूकार ने देखा—नकुला गया ही नहीं ! गुस्से में तमतमा उठा। नकुला के कपड़े, लकड़ी वग़ैरह सब उठाकर बरामदे में फेंक दिए। "कल सुबह तक घर न छोड़ा तो मेहतर लगवा कर बाहर निकलवा दूंगा !" आख़री हुक्म जारी कर दिया।

भोर हुई। नकुला घिसटते-घिसटते अपने दो-एक कपड़े समेट लाया। छान के उस घर से निकल आया। सारी देह को मक्खियाँ भिनभिना कर घेर रही हैं। आज पन्द्रह दिन से पेट में एक दाना भी नहीं पड़ा। बस, कल रात साहूकारनी ने कटोरा भर पना बनाकर जो दिया था, उतना ही पेट में गया है।

नकुला का सिर साँय-साँय कर रहा है। पाँव फूले हुए हैं। राह में कंकरियों से परत-के-परत छिलके उतर जाते टकरा कर।

गाँव के छोर पर अमराई। नकुला दम लेने को रुक गया छाया में। अब दो क़दम भी चलने की ताक़त नहीं रह गई थी। सोचा था घड़ी भर बाद उठ कर चल पड़ेगा।

मगर एक बार पेड़-तले बैठकर वह उठ भी न पाया। जड़ के सहारे सिर को रख वहीं लेट गया। सारी देह पर चेचक के घाव जगह-जगह धँसे जा रहे थे। हाड़ों तक मानो पहुँच गए हैं।

पन्द्रह दिन हुए, आज तक राजकुमारी की अपने राजकुमार से भेंट ही नहीं हो सकी। नित पोखर के पास बैठी-बैठी लौट जाती है। आँखों में नाचता होता उसके राजकुमार का गोरा-चिट्टा चेहरा, सोने का मुकुट, ज़री की पोशाक में सजीली देह ! रात-दिन वह सपना देखती।

उसे लगा जैसे वह खुद कोई राजकुमारी हो गई है। उसका राजकुमार छुड़ा लेने लाव-लश्कर लिए वहाँ चला आ रहा है। झटके से नींद खुल गई।

सुबह राजकुमारी ईंधन चुगने अमराई की ओर निकल पड़ी। लकड़ियाँ बीनते-बीनते देखा—एक जगह कुछ कौए फड़फड़ा रहे हैं। कोई सड़ी-गली गन्ध तैर आती।

वह चल पड़ी उसी झुरमुटे की ओर। कोई आदमी की काया पड़ी है। आदमी जी रहा है। टिमटिमाता एक आँख से देख रहा है। सारा चेहरा घावों से सड़ गया है। देह में फोड़े ही फोड़े, दुर्गन्ध भरी। कौए एक आँख कब की नोंच ले गये थे, और एक हाथ का माँस नोंच-नोंच उड़ गये हैं पास में।

घबरा कर सन्न रह गई वह। उस आदमी को पहचानने की कोशिश की। कुछ-कुछ पहचान में आया, फिर जब जाना, वह आश्चर्य में भर गई। मुँह से बोल भी नहीं निकले। कुछ क्षण बाद धीरे से बोली—"राजकुमार !"

राजकुमार की आँख कौए नोंच रहे थे। वह कोई जवाब न दे पाया।

●

माटी का ताज

ससुराल जाने के साल भर में ही खसम से झगड़ा कर, उससे तलाक़ लेकर अमीना बैलगाड़ी में सामान लाद कर आ गयी। बापू दिलेर मियाँ बाहर बरामदे में बीड़ी सुलगा रहा था। दूर से बैलों के गले की घण्टी-घूंघर की आवाज़ सुनकर कुछ लोग निकल आये कि कौन आ रहा है। पड़ोस का मदन खटेई भी थाली पर से बीच में उठ आया। सब उधर देखने लगे। बैलगाड़ी से उतर, उठी हुई आँखों से बचने के लिए अमीना तमतमाती घर में चली गयी। एक तीखे कटाक्ष से मदन को बींध गयी। अस्पष्ट आवाज़ में बोली, "मदन भैया, सलाम !"

बूढ़े दिलेर खाँ ने बीड़ी सुलगाई। कैंची ज़ोर से झनझना उठी।

मदन अपनी कुल्हाड़ी, लोहे की गज लेकर पसीने में भींगता निकल पड़ा।

अमीना आयी तब से गाँव भर की आँखें दिलेर ख़ाँ के घर पड़ी हैं। क्या हिन्दू क्या मुसलमान, बस्ती का हरेक उधर से जाते समय दिलेर के घर की ओर निगाहें फेंकता जाता है। दो-चार छोकरे साइकल चलाते-चलाते टकरा जाते हैं—ठीक दिलेर के घर के आगे धीरे-धीरे उठते हैं। कुछ हो जाता है—अनायास। दिलेर देखने के लिए सिर उठाता है। दो-चार मुसलमान छोकरे पिछले वर्ष ताजिया देखने गये तो एक टेनिस की गेंद ख़रीद लाये। गाँव की राह पर खेलते-खेलते जान-बूझकर दिलेर के घर में फेंक दिया उसे। इस तरह बचपन की पहचान की अमीना चाची को देखने का मौक़ा नहीं छोड़ते।

दिलेर खाँ यह सब नहीं समझता, ऐसी बात नहीं। मगर मन की बात वह ढांपे रखता है। हाथ की कैंची से तेंदू-पत्ते काट-क़ाटकर फेंक देता है।

पीहर आकर अमीना एकदम बदल गई है।

दो दिन बाद। सांझ को मदन जब खेत से लौटकर आंगन में बैठा था तो सुना—अमीना अपने घर की ओर किसी से झगड़ा कर बैठी है। इतना ही नहीं, झगड़ा करते-करते, कहते हैं, वह बेहोश हो गयी। पता नहीं क्या-क्या बकती रही। शादी के साल भर में अमीना क्यों ऐसी चिड़चिड़ी हो गयी, मदन समझ ही न पाया।

अगले दिन दुपहर में मदन घर आया तो घरवाली से सुना कि उनके और अमीना के घर के बीच की टूटी दीवार को बकरी लाँघ गयी। अमीना ने आकर

चार बात सुना दीं।

हाथ-पाँव हिलाती मदन के आगे उसकी घरवाली गुरवारी फ़रियाद करने लगी, "पठान की बेटी का जो मुँह! बातें एकदम छुरी की तरह चुभ जाती हैं! यों बिना समझे क्या खसम छोड़ देता? उई माँ! ऐसी कलहगारी है कोई दुनिया में? उस पठान के घर और क्या जनानी नहीं? वो जुलेखा है, जुबैदा है, हमीद निसा है, इसकी तरह यों काँटे में फाँस कर झगड़ा मोल लेती हैं? उनकी आवाज किसी ने सुनी?" मदन ने गम्भीर होकर सारी बातें सुनीं। ऊँ-चूँ कुछ नहीं कहा।

पथरिया साही के आखिर में है मदना का घर। उसके साथ सटकर है दिलेर खाँ का घर। छान से सटकर छान है और बाड़ लगी है। छान से छान लगाकर घर बनाने पर यों रोज कोई-न-कोई झगड़ा पिछले सौ वर्ष से पता नहीं कितनी बार हो गया होगा। मगर अमीना ने खुद आकर जैसी फ़जीहत की, वैसी मदना ने कभी सपने में भी नहीं सोची थी।

अमीना बाप के घर लौटकर समूची बदल गयी। पैर रखते ही घर का सारा मुरबीपन अनजाने उसके हाथ में चला गया है। छोटी बहिन मरियम उसके आगे मुँह नहीं खोल पाती। और सत्तर वर्ष बूढ़े बाप को देखा—चूहा बन दब जाता है!

आज तक बाप के सोने के कमरे में बीड़ी का डाला गन्दगी कर रहा था। अमीना ने उसे लेकर पीछे बाड़ी पर झुला दिया। मुर्गियाँ रोज घुसकर हज़ार गन्दगी करती रहतीं। अमीना ने ग़ुस्से में उन्हें पकड़ लिया और एक डलिया में ढँककर बन्द कर दिया, घर-बार में कहीं ज़रा गन्दा देखती, मरियम की देह पर हाथ जमाने में भी वह पीछे नहीं रहती।

दिलेर खाँ सुबह-शाम बरामदे में बैठा बीड़ी बनाता रहता है। कई बार अमीना का गरजन-तरजन और साथ में मरियम की रुलाई सुनता। फिर गम्भीर होकर तुरत-तुरत हाथ चलाने लग जाता। कभी-कभी अमीना से ठोकर-लात खाकर मरियम आकर बापू से कहती। बापू बिचारा सब सुनता, कहता मगर कुछ नहीं। बस, बीड़ी बनाने लग जाता।

सिर्फ़ घर में ही नहीं। अड़ोस-पड़ोस के लोग भी अमीना की आग में झुलस उठे। कोई आकर दिलेर के आगे अमीना के विरुद्ध फ़रियाद कर जाता। कोई कहता—अमीना को जल्दी बिदा करो! अपनी सहेलियों से निकाह की बात सुनती तो दाँत दिखाकर ऐसी झिड़कती—बस बोलती बन्द!

सबसे अधिक मदना की घरवाली गुरुवारी पर अमीना को गुस्सा है। उसके साथ झगड़ा कर जी भर गालियाँ सुनाने के लिए वह हरदम किसी मौक़े की तलाश में है। उस दिन अमीना का मुर्गा मदना के घर में किसी तरह बाड़ी लाँघकर

चला आया। इसी बात पर गुरुवारी की सात पीढ़ी उखाड़ फेंकीं। मुर्गों को खुद आवाज़ देकर उनके अण्डे बाज़ार में बेच आती है—यह बात अमीना ज़ोर देकर सबको सुनाती है। किसी के साथ झगड़ा करते अमीना को न कपड़ों का होश रहता है, न घर-बाहर का। वह हाँफने लगती है। उस दिन गुरुवारी के साथ झगड़ा करते-करते अमीना बेदम होकर होश खो बैठी। हाथ-पाँव ऐंठने लगे। गोरा चेहरा स्याह पड़ गया। मरियम देर तक माथे पर पानी छींटती रही, तब जाकर होश आया।

मदन साँझ-ढले काम से लौटा तो गुरुवारी ने उसके आगे सारी बात फ़रियाद की—इसका प्रतिकार न किया तो मैं अभी पीहर चली जाऊँगी। मगर मदना ने देखेंगे-देखेंगे कहकर बात बरदाश्त कर ली। अमीना के साथ झगड़ने की ज़रा भी इच्छा नहीं होती उसकी।

"अमीना ससुराल से आकर कुछ कड़े मिजाज़ की हो गई है।"—वह पत्नी को समझाने की कोशिश करता है।

दिन बीतने लगे, अमीना के अत्याचारों से गुरुवारी अस्थिर हो उठी। किसी दिन मदना की गाय दिलेर के आँगन में चली गयी, कभी बरसात में मदना के नाले का पानी जाकर दिलेर ख़ाँ के खलिहान में भर जाता। इन बातों को लेकर गुरुवारी के विरुद्ध अमीना ने जो प्रलय खड़ा कर दिया, इसमें बस्ती के और पाँच लोग भी गुरुवारी का पक्ष लेकर अमीना को कायल किये बिना न रह सके। पंचू खाँ, मागुणी बख्श, इरफ़ान मियाँ, आदि गाँव के मुखिया लोगों ने दो-चार बार दिलेर ख़ाँ को समझाया। मगर बेटी को धमकाने की दिलेर में ज़रा भी हिम्मत न थी। भले लोगों के उपदेश सुन, दबने के बजाय अमीना तो जलती आग में घी की तरह और भी भड़क उठी।

आखिर निरुपाय होकर मदन ने जाकर एक दिन दिलेर के आगे मुँह खोलकर फ़रियाद की। बरामदे के नीचे जा खड़ा हुआ, बोला "ये सब क्या बाहर लोगों को अच्छा लगता है दिलेर भैया? घर की बात रास्ते पर होना क्या सुहाता है?"

बूढ़ा दिलेर खाँ बीड़ी बनाते-बनाते सब सुन गया। दो क्षण बीड़ी बनाना रोककर, माथे पर हाथ मार, खुदा के वास्ते दुआ-सलाम कर रह गया। फिर अपने काम में लग गया।

मदन उसका नाम लेकर बापू के पास, फ़रियाद लेकर आया है! अमीना ने गुरुवारी को छोड़ मदन की सात पीढ़ी की बखिया उधेड़कर रख दी। मदन को सुनाकर कहा—

"हरामज़ादा, बीवी का ग़ुलाम बना फिरता है! मुझे नहीं जानता! दोनों का खून पी जाऊँगी!"

अमीना से ऐसी गाली सुनना मदना के लिए पहला अवसर था। पहले तो

अपने कानों को विश्वास ही नहीं हुआ। जिस अमीना को बचपन से खिला-खिला कर आदमी बनाया, वह आज उसे मुंह पर ही यों कहेगी ! समझ ही नहीं पाया। मन में उथल-पुथल मच गई उसके।

उस रात नीले आकाश में चाँद एकदम तोहफ़ा दिख रहा था। उस चाँदनी में आँगन में चटाई डाल मदना लेटा-लेटा इधर-उधर की बातें सोचने लगा। बचपन की उसी शान्त भोली-भाली अमीना के साथ आज इस झगड़ालू अमीना की तुलना करता रहा। इसमें कोई सामंजस्य ही नहीं दिखा उसे।

उसके जीवन के मरे हुए वर्ष फिर जी उठे, एक नये रूप में खड़े हो गए। याद आया—बचपन में अमीना के साथ कैसे घरौंदे बनाते, खेला करते थे। वही सफेद झक चाँदनी याद आ गयी—अमीना के गुलाबी चेहरे के पीछे केशों का झरना नाचता खेलता ! और उसके होठों पर सदा नाचती होती शोख़ एक हल्की, मुलायम मुस्कान ! मन ही मन सोचने लगा—कहाँ गए वे दिन ? क्या दुबारा लौटा नहीं जा सकता वहाँ ?

तब मदना की माँ जीवित थी। मदन के घर माणबसा (मँगसिर में गुरुवार को की जाने वाली लक्ष्मी-पूजा) के दिन माँ चुपके से जाकर अमीना और उसकी बहन मरियम को बुला लाती। मदना, अमीना और मरियम को क़तार में बिठाकर तीनों के आगे केले का पत्ता रख पिठा (मिठाई, पना, शरबत) आदि परोस देती। फिर खाना-पीना होने के बाद, तीनों की जूठी पत्तल खुद उठाकर पिछवाड़े में ले जाकर फेंक आती। 'पठान का जूठा उठाती है !'—कोई इस बात पर फब्ती कसता तो जवाब दे देती—

"ओह ! भला गौ की पूंछ बराबर तो ज़रा-सा बच्चा है ! उसकी भी कोई ऊँठ-जूंठ होती है ? अमीना क्या मेरी बेटी नहीं ? और पेट से पैदा होती तो क्या अधिक जाता ?" अमीना के घर पर ईद, नमाज-रोज़ा होता या खाना-पीना होता, अमीना आकर चुपके से मदन को बुला ले जाती। शबेबरात, ईद, बारेवफ़ात के दिन अमीना ने खुद मदना को क्या कुछ नहीं खिलाया है ! मदना को उनके घर में खाते देख कर बूढ़ा दिलेर खाँ हँस कर कहता, "हमारे घर खाने पर तेरी जात तो नहीं गई रे मदन !"

पठान के घर खाया है—यह बात सुन बस्ती के लोगों ने मदन की माँ को धमकाया। उस पर तरह-तरह के बन्धन लगाये। माँ हँस कर कहती, "मेरे बेटे को तुम बेटी नहीं दोगे, न सही। वह कुंआरा रह जायगा, बस !" मगर बाद में सहम कर बोली, "ठीक है, मैं आज उसे गंगा जल, पंचामृत पिलाकर शुद्ध कर लेती हूं। कितना ही मना करूँ, वह नालायक छोकरा कोई बात सुनता ही नहीं ! घर में भला किसी चीज का अभाव है ?" मदन पास होता तो कहती, "नासपीटे !" और झूठी-सच्ची धौल जमाकर खींच ले जाती उनके सामने। बस, वहीं जटिल

समस्या का फ़ैसला हो जाता !

मदन को याद आया···कितने ही दिन हुए···ऐसी ही भादों की पूनम की रात थी···उसके हाथ में अमीना का हाथ···दोनों आँगन में धुंधली चांदनी में सहिजन के गाछ-तले बैठे भविष्य की बातें कर रहे थे। कानाफूसी करते-से धीमे-धीमे बोल रहे थे। तब मदन कोई पन्द्रह का और अमीना शायद बारह-तेरह की होगी। रात कितनी हो गयी उधर किसी का ध्यान ही न था। मदन की माँ रसोई का काम कर आँचल की ओट में ढिबरी किये निकली। आकर बोली, "आज दोनों का खेल खत्म नहीं होगा?" तब जाकर दोनों को होश आया। अपने-अपने घर गये। मदन चित-लेटा आँगन में उस घने सहिजन की ओर ताकता रहा। चांदनी में सहिजन के बेशुमार पत्ते पानी में सेवार की तरह झूम रहे थे।

मदन को याद आया—कभी-कभी साँझ में वे दोनों गाँव के छोर पर सौ बरस के बूढ़े हाजी साहब मुस्तफा के पास कहानी सुनने हाज़िर हो जाते। अरब के रेगिस्तान के मुसाफ़िर की बात, निर्जल रेगिस्तान में ऊँट और फ़क़ीर की बात···सुनकर दोनों डरते हुए और पास-पास सट जाते। दूर रेगिस्तान के उस पार खजूर के झुरमुटे में बेहोश सोये हरे द्वीप में चले जाने की बात अमीना की ढलढलाती आँखें कहतीं··· वे नशीली आँखें आज भी मदन को याद हैं।

मदन पन्द्रह बरस की उमर तक अमीना को छोड़ दूसरी किसी को जानता ही न था। अमीना भी तेरह की उमर में "मदन भैया!" कहती, तब एक का घर दोनों का घर था। दोनों एक-दूसरे के दिन के साथी थे और रात में सपने बन जीवन का सबसे तरल और मधुर समय विताया था उन्होंने।

इस के बाद एक दिन—

उस दिन मदन की अमीना से भेंट नहीं हुई। कितना ढूँढ़ा, पोखर-झुरमुट आदि पर जहाँ-जहाँ अमीना के साथ उसकी नित भेंट हुआ करती थी। चारों ओर खोजता फिरा। चौथे दिन सवेरे-सवेरे मदन जा कर अमीना के घर के बाहरी बरामदे में चुपके से जा खड़ा हुआ। बूढ़ा दिलेर खाँ बरामदे में ही बैठा बीड़ी बना रहा था। उदास चेहरे से मदना ने पूछा, "अमीना है?"

बूढ़े दिलेर की सफ़ेद दाढ़ी पर हँसी लहरा गयी। पल-भर बीड़ी बनाना रोक कर बोला, "अमीना बड़ी हो गयी है। अब किसी से भेंट नहीं करेगी। जल्दी ही शादी होगी।"

मदन चुपचाप लौट आया। उसके बाद से अमीना के साथ बात-चीत का मौक़ा नहीं आया, न मदन पूरी नज़र अमीना को देख सका।

दूर बहुत दूर से कभी-कभी अमीना की छाया उसकी आँखों में पड़ जाती, पर ठीक से देखता, उसके पहले ही वह चली जाती।

उसी दिन गणेश मारवाड़ी के घर का पक्का काम करने निहान, हथौड़ी ले

कर निकला, देखा तो अमीना के घर के पास थूहर की बाड़ में किसी की चूड़ियों की खनक ! दूर से अमीना उसी की ओर अपलक देख रही है। आँखें चार होते ही अमीना की आँखें झुक गयीं, आँचल ठीक कर वह तुरन्त पेड़ की ओट में जा छुपी।

एक और दिन मदन उस राह जा रहा था, देखा तो अमीना उसके बाहरवाले कुंए से पानी खींच रही है। मदन को देखते ही अमीना का गगरा कुंए में ही रह जाता। बाहर का दरवाज़ा खुला रहने पर अमीना के घर का बाहरी आंगन रास्ते से ही दिख जाता है। रस्सी हाथ-पाँव में उलझकर रह जाती। उस की भूखी आँखें दूर से आते उसकी समूची देह को बींध जातीं। इसी तरह जाने-अनजाने, बोले-बिन बोले, देखे-अनदेखे में दोनों ही के दिन बीतते रहे।

अचानक उस दिन सुना कि अमीना के घर पर काफ़ी हो-हल्ला मचा हुआ है, कई लोग आये हैं। कोरमा, पुलाव और जाफ़रानी की बिरियानी से दिलेर मियाँ का घर महक रहा है।

इसके एक पखवाड़े बाद ही बाजे-गाजे, पटाखे और रोशनी में तराई में बसा वह गाँव भर उठा। दूल्हा आया, बरात आ पहुँची। मौलवी, हजाम आदि सब आये।

दूल्हे की तरफ़ से दो वकील गुहा को साथ ले कर अमीना का मत जानने के लिए साधारण रिवाज़ के मुताबिक अन्दर गये। दूल्हे वालों ने देन मेहर के लिए सोने का हार भेंट किया। इस के बाद अमीना से तीन बार काज़ी ने पूछा—

"आनिका होमिन शुन्नोति फमन···रघेवा आन शुन्नोति फरोसा मिन्नी···"

अमीना की मर्ज़ी या नामर्ज़ी का कुछ पता न चला। उसकी सहमति जानने के लिए पाँच रुपये उस के हाथ में दिए गए। एक वकील ने थाली ले कर उस पर रुपये रख दिए और कहा वह राज़ी है—यह बात बता देने का हुक्म दिया। शायद अमीना का हाथ तब काँप उठा था। उसके बाद उसके क्लांत-शिथिल हाथ से चाँदी के रुपये अपने बोझ से खुद झनझना कर गिर पड़े थे। वकील अमीना की सहमति ले कर दूल्हे के पास हाजिर हुए। अमीना के उस हाथ के इशारे में उसकी सहमति थी या नहीं, इसे समझने का किसी के पास वक़्त न था। ख़ुद अमीना भी इतने गाजे-बाजे, लोग-बाग, कुटुम्ब के लोग, काज़ी-मौलवी की भीड़ में अपने मन की बात कुछ कह नहीं पायी।

अब दूल्हे की इस शादी में सहमति है या नहीं, जानने के लिए वकील ने जाकर साधारण ढंग से पूछा, "कबूल है?" तुरंत रज़ामंदी ज़ाहिर की "कबूल!" सब ख़ुश हो गए। काज़ी साहब ने विवाह का सारा काम निपटा दिया। गाँव भर को पता चल गया—शुक्रान पढ़ी गयी।

शादी के बाद रुखनुमाई शुरू हुई। दूल्हा-दुलहन एक-दूसरे का मुंह देखने के

लिए अलग कमरे में लाये गए। अमीना के हाथ में एक आईना थमा दिया गया। उसी में अपने खाविंद का चेहरा देखेगी। आईने के साफ़ कांच पर उसके खाविंद का काली-काली दाढ़ी वाला चेहरा उतर आया—अमीना की अनिच्छा पर भी आँखें वहाँ से हटकर आवारगी में उस कमरे की दीवारों पर इधर-उधर फिरने लगीं। शुभ दृष्टि का लगन मुरझा गया।

यथासमय बारात रुखसत हुई। दिलेर खाँ का घर सुनसान हो गया। उस सन्नाटे की तेज धार माटी की दीवार काटकर इधर आती और हर पल मदन को चीर जाती।

तभी मदन को याद आया—ससुराल रवाना होने के दो घण्टा पहले अपने आँगन में खड़े हो कर फटी दीवार के बीच से एक बार अमीना को देखा था। अमीना वधू के रूप में सजकर अपने आँगन में खड़ी थी। शादी के शोरगुल में हट कर ज़रा दम लेने खड़ी थी वहाँ। मदन ने आँखों से आँख मिलते ही देखा—अमीना की आँखें कई दिन की अनींदी हैं। वह और आगे देख न सका उस ओर।

अमीना के ससुराल जाने के बाद मदन ने शादी की ज़िद पकड़ ली। पता नहीं, कौन-सा गुस्सा निकालने के लिए किसी को भी गले में बांध लेने के लिए उतावला हो उठा। कोई पूछता तो कहता, "क्यों ? सब तो शादी करेंगे, मैं क्या आदमी नहीं ? मैं शादी के लायक नहीं ?"

महीने भर में मदन गुरुवारी को चार कोस तण्डीकणा गाँव से उठा लाया।

आज इस सुनसान रात में वह सहजन की धुंधली छाया में अतीत की वह पुरानी कहानी फन उठा कर खड़ी हो गयी है।

मन के सोये नाग आज विस्मृति के ढूह तले से निकल खुले में फिरना चाहते हैं।

सोचते-सोचते पता नहीं कब मदन की आँख लग गयी। इसी बीच रसोई का काम पूरा कर गुरुवारी भी आकर गिर रही उस के पास। आधी रात गए नींद टूटी। देखा, सफ़ेद कपडों में कोई हिलडुल रहा है, और एकटक उसकी ओर देख रहा है। मदन ने छाती पर से गुरुवारी का हाथ झटक दिया। आँखें मलते हुए खड़ा हो गया। देखा, आकाश में तोफा चांद वैसे ही मुसका रहा है। वह छाया दीवार की ओट में धीरे-धीरे दूर सरकती जा रही है। मदन ने आवाज़ दी, "कौन है ?"

कोई जवाब नहीं। जहाँ दीवार फटी हुई है, उधर छाया नहीं, धुंधलका भी नहीं। चाँदनी में अखा चावल की तरह सब साफ़ दिख रहा है। छाया उस ओर जाते मदन पहचान गया—अरे यह तो अमीना है ! उस की दोनों बड़ी-बड़ी आँखें ज्वार-भाटे की तरह दिख रही हैं। उन में क्लान्ति ही क्लान्ति की परतें जमी हुई हैं—

मदन नें आवाज़ दी—"अमीना !"

छाया उस टूटी दीवार के पीछे दिलेर खाँ के आँगन में चली गई, मदन लौट आया।

और रात भर नींद नहीं आयी। मन डर से भर गया। अमीना का मतलब नहीं समझ पाया। अमीना की बड़ी-बड़ी आँखें हर पल उसका शिकारी की तरह पीछा करती रहीं। गुरुवारी डर न जाय अतः कोई बात खुलासा कर नहीं कही।

मदन को याद आया—अमीना सुबह धमकी दे गई है—दोनों का खून पी जाऊंगी !—तो क्या वह इतनी रात गए मेरा और गुरुवारी का खून करने आयी थी ? किन्तु अमीना की आँखें इस आशंका का प्रतिवाद करती-सी लगीं उसे। खून करने ही आती तो यों उसकी ओर एकटक देखती न रहती, उस रात का सारा रहस्य सारी गहराई उसकी आँखों में छुपी थी। मदन को याद आया—ससुराल जाने से पहले भी अमीना ठीक इसी तरह देख रही थी। फिर याद आया—कहीं ···उसके हाथ में कोई छुरी-गँडासा तो नहीं था !

मदन को कोई ओर-छोर न मिला।

× × ×

कुछ दिन बाद अमीना अचानक बेहोश होकर गिर पड़ी। वह बराबर बड़-बड़ाने लगी। अपने पति और गुरुवारी के विरुद्ध वह ज़हर उगलने लगी।···अपने पति को जहन्नुम में भिजवाकर रहेगी···गुरुवारी का खून कर देगी···ऐसी ही बातें दिनभर बड़बड़ाती रही।

कई कविराज आए, हकीम आये, मगर अमीना को होश नहीं आया।

अपने बाल नोंच लिये—अपनी बाँह को दाँतों से काट-काट घाव कर लिये।

गुरुवारी और अपने खसम को गाली देते-देते उसका मन कुछ थका, तब वह मदन की ओर मुखातिब हुई। मदन ही सारे अनर्थ का मूल है, मदन ने मेरा खून किया है—वह और ज़ोर-ज़ोर से बकने लगी।

रात कफ़ जम गया छाती में। कविराज ने नाड़ी देखकर कहा—निमोनिया के लक्षण हैं ! नीमहोशी में वैसे ही बड़बड़ाती रही।

अगले दिन कफ़ और बढ़ गया, गला रुँध गया।

सुबह ख़बर फैल गयी—अमीना मर गई है ! गुरुवारी ने खुशी में भर मदन को बताया, "मेरी···वो मेरी आफ़त मिट गई !" मदन ने उसकी बात का कोई जवाब नहीं दिया, अनमने स्वर में सिर्फ़ इतना कहा, "ओह ! बिचारी बहुत छटपटा कर मरी !"

अमीना की लाश पश्चिम की ओर सिरहाना कर लिटा दी गयी, वाज़ स्नान कराया गया, नमाज़ पढ़ कर ताबूत में रखा गया। क़ब्रिस्तान चल पड़े। अमीना की आत्मा की सद्गति के लिए मौलवी साहब ने जनाज़े की अजान पढ़ी—

शुभनाका आलम वहा मजीका वाजला सनौका वातवार हक समूहा वाताअल, यदूकावलाइलाहागरेका…

कन्धा देनेवाले सारे रास्ते ताबूत उठाए, कन्धे बदलते जा रहे थे—काना आलल खयार !

बेलदारों ने क़ब्र खोदी, शव का संस्कार किया गया। अमीना की देह उस गड्ढे में लिटा दी गई। आखिरी नमाज़ पढ़ी गयी--

"विसमिलहि मजरिहा वमूर साहा

इनानबि लग फ़ुर रहीम……"

और फिर माटी की चादर-तले अमीना की नन्ही-सी माटी की देह कहीं छुप गई।

कुछ दिन बाद मदन ऐसे ही दिलेर खाँ के पास पहुँचा, "अमीना पर एक क़ब्र बनवानी होगी, मैं खुद पत्थर काट कर चूने का पलस्तर दे कर बना दूंगा। एक पैसा भी मजूरी नहीं चाहिए।" बूढ़ा दिलेर खाँ बीड़ी बनाते-बनाते सब गम्भीर बना सुन गया। फिर बोला, "तेरी जैसी मरजी कर, खुदा की जो इच्छा ! मैं अब और किसी को रोकूंगा नहीं।"

अगले दिन देखा कि मदन जाकर अमीना की क़ब्र की चिनाई कर रहा है।

रोज़ सांझ को वह पत्थर की चिनाई कर लौटते समय वहां रुकता, पत्थर पर पत्थर लगा क़ब्र बनाने लग जाता।

रात में तोरई के फूल की तरह चाँद साँवले मसान पर चांदनी बिखेरता होता तब मदन अमीना की क़ब्र पर बैठ अपने अतीत के जले मसान की ओर देखता। याद आता वह दिन, जब गाँव में किसी की क़ब्र देख अमीना ने उससे कहा था—"मेरे मरने के बाद तू ऐसी ही क़ब्र बना देना !"

दूर से अमीना की बचपनी मुलायम हँसी की तरह चांदनी तैर आती है और क़ब्रिस्तान की धरती पर बेशुमार फैल घास में लहराती बह जाती है।

●

कोई नहीं

कलकत्ते के वड़े बाजार में अँधेरी बाइलेन में वह छोटा-सा सँकरा टिन का घर। हमेशा की तरह उस दिन भी साँझ में मजलिस अच्छी तरह जमी थी। घर के नाम पर ईंट की बनी चार दीवारें—उन पर लम्बे-लम्बे बाँस डाल कर टिन डाल दी गई थी। पिछली दीवार पर चार हाथ ऊँची बड़ी जाली—उसी को ये झरोखा कहते हैं। उस झरोखे के अन्दर की ओर एक टाट बँधा है जो बाँस की खपच्चियों के सहारे झूल रहा है। रात में कभी-कभी अधिक ठण्ड पड़ने पर टाट का एक टुकड़ा डाल कर वह झरोखा बन्द कर दिया जाता है। घर के अन्दर चारों ओर चमगादड़ चीं-चीं करते हैं—दीवार के सहारे, फ़र्श पर चारों ओर गन्दगी और हर जगह चमगादड़ों की बीट !

पिछवाड़े से बाँस टँगा है—अलगनी बनाई गई है। उस पर झूल रहे हैं दुनिया भर के गमछे, मैले-कुचैले कपड़, चिरी-फटी कारी-लगी गंजियाँ, कमीज़, कोट वग़ैरह। घर में नीचे रखा पिटारा, काठ के संदूक़ वग़ैरह कुल मिलाकर दस-बारह। पान चबा कर चूने के हाथ पोंछते-पोंछते काले संदूक़ भी बाहर की ओर से सफ़ेद दिखने लगे हैं।

उसी सीलनभरी अँधेरी कोठरी में रात होने पर पाँच आदमी कन्था डालकर, सिरहाने धोती का तकिया लगा कर लेट जाते हैं। दिन उगने पर अपने-अपने काम पर निकल जाते हैं। कौन किधर जाता है, कब लौटता है, ऊधव भैया के होटल में कुछ खा कर फिर काम पर चला जाता है—किसी को किसी की खबर नहीं होती।

पाँचों कार्पोरेशन के कुली हैं। रास्ता मरम्मत करते हैं। कहीं सड़क कटने-टूटने पर दोनों ओर बाँस की टोकरी डाल लालटेन जला 'रास्ता बन्द है' या 'रोड क्लोज्ड' का टिन लटका, अपने-अपने काम में जुट जाते। कोई अलकतरा ढालता, कोई कुदाल, कोड़ी उठाता और पत्थर फोड़ता, कोई भारी रोलर चला समतल करता। पसीने में तर औरों के साथ ज़ोर से गा उठता—

'हो······ले······सा ······!'

साँझ-ढले हफ़्तेवारी पा कर लौटने पर उस दिन त्रिनाथ ठाकुरजी की पूजा बिठाते। पारी-पारी से हरेक उस दिन का गाँजे, सुलफे का खर्च देता। खंजड़ी पर

थाप लगती, भजन-दूहा वोलते, गाँजे की फंकी के साथ दुनिया भर की डींग हांकते, लफ़्फ़ाजी की हवा घर में पैंतरा मारती। पाँचों की दिन-भर की चर्या—उनका खान-पान, काम-धाम, बात-चीत—सब क़रीब-क़रीब इकसार है, कहीं रंचभर भी फरक नहीं। फरक सिर्फ़ उनके रात के सपनों में होता !

रात में, नींद में अचेत। कोई कुछ सपना देखता, कोई कुछ। दूर गाँव के हरे-भरे बग़ीचे में अधबने फूस के घर में कांपती है अस्सी बरस की बुढ़िया। इस बार छान नहीं बँधी तो बरखा में एक भीत गिर गई, उसी में बुढ़िया ताकती बैठी है डाकिए की राह—आतुर प्रतीक्षा करती-करती।

कोई सपना देखता है—एक मुरझाया-सा ताज़ा खिला चेहरा आँसुओं में भींगा, तार-तार साड़ी के आँचल में दिन पर दिन और भी मुरझाता जा रहा है। साँझ-ढले तुलसी-चौरे के आगे सिर नवाकर सन्ध्या-दीप रखकर गुन-गुन स्वर में वह पता नहीं क्या कुछ मनौती करती है। वह अधनींद में बड़बड़ा उठती है—"हाँ मैं हूँ, मैं हूँ···माँ, आयी···" कोई सपना देखता—थुलथुल पेट, नाक बहता छोकरा···पेट में प्लीहा, देह में ज्वर, पाँव फूले-फूले हुए। वह लेने को हाथ बढ़ाती है। पत्थर की तरह सख़्त ईंट की दीवार से दाहिनी कुहनी ज़ोर से टकरा जाती है। चीख़ उठता है दर्द के मारे नींद में भी। ऊपर चमगादड़ चीं-चीं कर मानो उसे चिढ़ा रहे हैं। घर के पास मुखर्जी साहब के मकान में दुष्ट सुआ भोर से ही सुराग़ पा कर लोहे के पिंजरे में, नौकर रामा को आवाज़ दे रहा है—

ओ रामा ! ओ रामा ! क्र···र···क्र···ट्···

उस दिन साँझ से ही मेघ घिर आए थे। समय पर अपने-अपने काम से लौट कर सब कोई घर में सुख-दुख बतिया रहे थे। घोकड़िया बागान के मित्र के मकान में काम करने वाले मागुणिया के यहाँ गया था। सब के घर की बात, भले-बुरे की ख़बर, निर्माल्य के कण, ग्रामदेवी का प्रसाद और पता नहीं, क्या ले कर लौटा है। सब मिल कर मागुणिया से गाँव के हाल-चाल पूछते हैं। बरामदे में जलते चूल्हे पर बड़ी बाल्टी में सोड़े और साबुन के पानी में कुछ मैले कपड़े रखे हैं उबाल कर, सुबह धोने के लिए। मैले कपड़ों की चीकट-भरी गन्ध घर में भर रही है, बरसाती हवा के साथ उस अधखुले किवाड़ को धकेलती हुई।

इस बार खेतों के क्या हाल हैं ? इस दफ़ा मेले के शुरू में सलटन कैसा हुआ, रामलीला हो गई या नहीं। अणिजेना के बाप की सुधी किरिया में कितनी मूरत बामन पधारे चिवड़ा-दही खाने ? गोबरी नदी कैसे उफान में आकर घर-बार समेट लेती है···आदि बातों का उत्तर देने के बाद मागुणिया ने पूछा, "कुंजिया भैया कहाँ गए ? उसकी भारजा सूख-सूख काँटा हो गई। मेरे हाथ ख़बर भेजी है—अब की मगसिर में कुछ रुपया-धेली ले कर गाँव आयें।"

मुस्कराकर अगाधु ने कहा, "दिन भर तो कुंजिया भैया हमारे पास रहता है,

रात होने पर उसका पता किसी को मिलेगा ? कल देखा, हफ़्ता के रुपये ले कर रेशमी चूड़ियाँ खरीदीं, गमछे में बाँध छुपा कर साँझ को कहीं गया था।

अर्पतिया ने आँख झपक कर संकेत किया, बोला, "वो सब क्या अगाधू भैया नहीं जानते ? वो तो झामापुकुर गली की किसी खानगी के चक्कर में पड़ा है। रोज उस राँड के पास गये बिना आजकल उस का खाना ही हजम नहीं होता।"

छप्पर-फाड़ हँसी से भर गया सारा घर।

× × ×

ठीक उसी समय। झामापुकुर से जो गन्दी-सी गली जा कर कार्नवालिस स्ट्रीट वाले ट्राम रोड के पास ठनठनी काली की तरफ़ निकलती है, उसी में किसी टिन के टूटे घर में कुंजिया अपनी छाती पर रधिया को झुकाये कान में कह रहा है—

"ठाकुरजी की सौं, तुझे देख हमार गोरी की याद आ जाती है ! तोहार चेहरा ठीक उसी की तरह ! वैसे ही डील-डौल ! मोटा-मोटा। तोहर ओंठ उसी की तरह दुष्ट। तू हँसत हो जब लगता गोरी हँस रही है। तभी तुम को देख हम गोरी को भूल गए ! तू ही तो गोरी नहीं हमारी ? सारा धन्धा छोड़ इहाँ आई रही !"

खें-खें कर ज़ोर से हँस पड़ी। लालटेन के धुंधले उजाले में रधिया की छाती उठ-गिर रही है। बात बदलने के लिए बोली, "गोरी को इतना चाहते हो ! मगर ई दफ़ा हफ़्तावारी सारी खरच दी, उसे का भेजोगे ?"

खाट-तले बिखरी ख़ाली बोतलों की ओर देखा। कुंजिया चुप रहा। अचानक चेहरा स्याह पड़ गया। उदास स्वर में बोला, "हाँ, सो तो है सब दई दिया तोहे ! घर का भेजेंगे ?" आवाज़ में लगा, जैसे वह थक कर चूर हो गया है।

रधिया ने गुमान में कहा, "मोहे रुपया दे कर अफसोस करत हो ? नहीं चाहिए तोहार रुपल्ली ! ले लो ! हम तोहार का ?"

कुंजिया ने घबरा कर कहा, "गुस्सा होय गई ! हम तोहार से रुपये माँगते हैं ?" उसने बात टालनी चाही, "छिः, तू हम पर गुस्सा करत हो राधी ! तू औरत ऐसी ही हो ! गोरी भी गुसा हो तो अइसे ही मुँह फिराय के बोले ! तू गुसे में बोले तो गोरी की तरह तोहार अँखियों नाच रहीं। एक दफे मेले से सिलवर का कंगन लाने कही। हम चंडाल वहाँ जूआ का दाँव लगाये और भूल ही गए ! खाली ही आ गए घर। उस दिन उसका रूसना देखा ! दो दिन बोली ही बन्द ! सौगन्ध-सपत कुछ नहीं सुना। तेरी तरह मुँह फिरा हँसती। बस भीत से बोलती, हम सूं कछू नहीं। तेरा गुसा सच्ची-सच्ची वैसा ही लगता !"

खीझ-भरी रधिया बोली, "सदा तो गोरी-गोरी बस···दुनिया में दूसरी कोई बात ही नहीं ! उस निगोड़ी की बात मेरे आगे काहे बोल रिहे हो ? चिनगी-सी लगती है हमारी देह में ! जा अपनी गोरी···चिट्टी के पास···कित्ती दफे कह दिया, ह्याँ कोउ गोरी-काली नाँय···मैं रधिया···राधी हूँ राधी !"

कुछ रुककर बोली, ठीक है, "तू जा अब ! अभी वो दारूवाला पठान आयेगा, मेरा झोंटा ही खींच लेगा । तुझे मेरे घर में देख उसने मो पर हाथ उठाया था !"

राधी मुंह मोड़ सो गई ।

राधी से गाली-गलौज सुन कर अपराधी की तरह कुंजिया निकल आया । बाहर ठनठनिया मन्दिर में संध्या-आरती हो रही थी । कुंजिया को याद आया— "इस घड़ी अपुन गांव में चबूतरे पर आरती हो रही होगी, बिचारी आंचल उठाये गलवस्त्र हो तुलसी-चौरे के पास संध्यादीप जला कर प्रणामी करती होगी ।' आँखें गीली हो आयीं उसकी । पिछले बरस खेत मर गया तब वहू और भाभी को घर पर छोड़ कलकत्ता चला आया । आशा थी साल भर में कुछ पैसा-कोड़ी कमा कर फिर खेत के दिनों में लौट जाएगा । पर दो बरस हो गए । कुंजिया गांव नहीं लौट पाया । पिछले वरस पैसों का अभाव रहा, इस वरस छुट्टी नहीं मिली । घर-लौटती चिड़िया के राह में अटकने की तरह उसका मन एक तरह से किरच-किरच हो गया है । दिन भर लोहे का रोलर खींच-खींच कर रास्ते में बलुआ पत्थर संग अपनी सबल सरीखी बाँहों को पथरीली बनाकर साँझ में थका-हारा लौटता है । गोरीकी बात, गाँव की बात सोचते-सोचते सो जाता है । यही थी उस की घिसटती-पिटती ज़िंदगी की एकमात्र खुशी ।

बहुत दिन हुए···आज से कोई चार महीने पहले झामापुकुर वाली गली के एक टुकड़े की मरम्मत हो रही थी । कुंजिया पसीने में तर रोलर खींच रहा था । देखा, रास्ते के किनारे टिन के घर में बरामदे में बैठी राधी धूप में बाल सुखा रही है । मुंह में पिक्का लगाये है । कुंजिया ने तनिक रुक कर उसकी ओर देखा । उसे लगा, जैसे गोरी का सुन्दर चेहरा उतार कर कोई रधिया के कंधे पर बिठा गया है । सोचने लगा वह—'गोरी क्या सचमुच यहाँ लौट आयी है ?' उसे अनमना जान, पिछड़ न जाये इसलिए संगियों ने पीछे से धकेल कर कहा—"हो ले सा···!"

कुंजिया को होश आ गया । रोलर फिर खींचने लगा, रास्ते पर कंक्रीट पीसता वह भारी रोलर चलने लगा ।

× × ×

उसी दिन साँझ को कुंजिया घर लौट नहा-धोकर साफ़-सुथरे कपड़े पहन, कोई दो बरस बाद फिर से जाकर रधिया से भेंट-मुलाक़ात कर आया । रधिया से पता चला कि उसका घर जलेश्वर में है । भुलावा देकर कोई ले आया ससुराल से, और फिर कलकत्ते में छोड़ गया है ।

तब से कुंजिया को रधिया में अपनी गुमी हुई गोरी मिल गई है । दिन भर की हाड़-फोड़ मिहनत के बाद जब याद आती गोरी की, तो मन में हूक उठती । आँखें छलछला जातीं । और तभी वह रधिया तक दौड़ा जाता । दरवाजे पर

दस्तक देकर कहता—"रधिया···मैं आया हूँ !"

कुंजिया के रोलर-जैसे भारी जीवन में सदा कीचड़-गारा, कंकड़-पत्थर, घिसट-घिसट चलती ज़िन्दगी, उसमें अब दो बरस बाद मिली है दम मारने की जगह ! ज़रा-सी छाया। हो सकता है यह सिर्फ़ छाया है, निहायत झूठ ! मगर इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है ? थके-हारे बटोही के टूटे मन की तरह हर बात को नाप-तौल कर विचार करने का समय कहाँ ?

बरसात की रात। कुंजिया ने उस दिन रधिया के दरवाज़े जाकर देखा, अन्दर से किवाड़ बन्द हैं। उसने सोचा, शायद शरीफ़ मियाँ ड्राइवर, जो रधिया के यहाँ जाता रहता है, लगता है वही है। अन्दर आने का इशारा किया खिड़की से। उसने किवाड़ खोले। उसका हाथ पकड़ अन्दर ले गई।

लालटेन के टिमटिमाते धुँधले उजाले में कुंजिया ने देखा, रधिया रो रही है।

देर तक सौगन्द-शपथ दी तब जाकर रधिया ने बताया कि दारू पीने के लिए उस ड्राइवर ने पैसे माँगे। रधिया ने मना कर दिया तो उठा कर दारू की टूटी बोतल दे मारी। उसने देखा, बोतल से रधिया का दाहिना हाथ घायल हो गया है। कुंजिया ने आँखें फाड़-फाड़कर चारों ओर खोजा। देखा, दीवार पर एक ओर कोई फटी कमीज़ टँगी है। और उस कमीज़ में कोई बहुत पुराना ख़ून का दाग़ लगा हुआ है। कहीं-कहीं लापरवाही में बीड़ी पीने के कारण गुल के निशान होकर सूराख़ हो गए हैं। कुंजिया ने सोचा, दौड़कर उस कुरते को तार-तार कर डालूं। यह समझने में उसे देर न लगी कि यह कुर्ता उसी ड्राइवर का है।

ग़ुस्से में दाँत पीस लिये—"क्यों उस नशेबाज़ को यहाँ आने देती है ? तेरी क्या इज़्ज़त नहीं ?"

कुंजिया से दरद-मिली बात सुन रधिया फफक-फफक कर रो पड़ी। उसकी ग़लती बताकर उस पर नाराज़ होने वाला, दुख में हमदर्दी जताने वाला दुनिया में इतने दिन बाद कोई तो मिला ! कुंजिया से बोली, "वह·· वह मुझको नशे में यों पीटता है···लुगदी बना देता है ! गहने वग़ैरह जो दो-चार थे—सब दारू में उड़ा दिए उसने। कभी-कभी हाथ में पैसे न हों तो मना कर देती हूँ। मगर वो छोड़ेगा ? बक्सा, पेटी सब खोलेगा, ताला तोड़ देगा, जबरन ले जाएगा। मना करूँ तो मार, लात···। इसी बीच पचास बार कुटाई कर दी मेरी।"

"पचास बार ! आज तक कभी तो नहीं कहा ! मैं उस बदमाश का ख़ून पी जाऊँगा !" ग़ुस्से में कुंजिया ने कहा।

रधिया ने कुछ नहीं कहा। सिर नवाए रही।

ऐसे दुष्ट को घर में आने ही क्यों देती है ? कुंजिया की समझ में नहीं आता। वह जानता है, वेश्या पैसे के लिए काम करती है। मगर रधिया की और ही बात है। वह ताज्जुब में पड़ गया। आँख टिमटमा कर देखता रहा। इसके बाद

खाट के नीचे पड़े बीड़ी के टुकड़ों को अन्यमनस्क होकर मसलने लगा।

खुली खिड़की के रास्ते गैस की रोशनी आकर रघिया के गन्दे बिस्तर पर उजाला कर रही थीं।

बाहर टुप-टुप बरखा। टिन के घर पर छोटी-छोटी बूंदें एक अजीब-सी मादक आवाज़ करने लगीं, मानो अभी नींद आ जाएगी। कुंजिया देर तक उधर कान लगाये रहा, "ऐसी बरखा में गोरी क्या करती है, जानती है?···रसोई का काम कर मेरे पास आ बैठती है। कहेगी—तू सो जा। मैं तेरे सिरहाने रात भर जागती रहूँगी। और तब मैं कहता—ना, ना, तू सो जा। मैं तेरे सिरहाने रात भर जाग लूंगा। अन्त में हम में से कोई नहीं सोयेगा। बस, उस पनीले अँधेरे को देखते रात-भर जागते रहेंगे।"

रघिया गम्भीर हो गई। फिर भी बाहर से वह मुस्कराने का दिखावा कर रही थी—"मैं तो गोरी नहीं!"

कुंजिया ने कहा—"नहीं हो। मगर तेरी आंख, तेरी ये हँसी,-नज़र सब तो ठीक उसी की तरह हैं, इत्ता-सा फरक नहीं री! तुझे देख सच, मैं गोरी को भूल जाता हूँ।"

रघिया ने गुमान में कहा, "हो! तभी तुम मेरे पास आते हो! मेरा चेहरा रंग-रूप गोरी-सा न होता, तू कभी आता? क्यों?"

कुंजिया बात की इतनी गहराई में नहीं गया था। क्या जवाब देता इस बात का? आखिर बोला, "ना।"

दुख और ईर्ष्या में रघिया फीकी पड़ गई। वह कुछ क्षण चुप रहकर बोली, "तो मेरा कोई काम नहीं? मेरा अलग कोई हिसाब नहीं? मैं आदमी नहीं? मेरी अपनी अलग कोई चीज़ नहीं?"

तो रघिया कोई बात कह रही है! हालांकि वह उसकी बात ठीक से समझ नहीं रहा। बात टालने के लिए कहा, "ना, ना, मैं वैसा बोला?"

रघिया गम्भीर हो बोली, "मैंने तुझे पहले देखा तब से तू गोरी के सिवा कुछ बोलता ही नहीं! हजार बार कहा तूने कि मैं गोरी जैसी हूँ।···तभी तुम आते हो! क्या यह सच नहीं?"

कुंजिया बुद्धू की तरह सिर खुजलाते-खुजलाते बोला, "हां, ई बात तो है! हम तोहे गोरी की तरह अपना आदमी समझे रहे।"

रघिया की नाक फनफना रही थी। रघिया भी एक आदमी है। उसकी अपनी एक हस्ती है, उसका आहत नारीत्व इस बात की ज़ोर देकर घोषणा करना चाहता है। जिस सस्ती देह को वह मांस वज़न करने की तरह बाज़ार में बेचती है, उसमें से कोई चीख रहा है—रघिया, रघिया! किसी की नक़ल नहीं। गोरी या किसी और का मुखौटा लगा कर उसकी दया से कुंजिया का नेह-ममता का दान नहीं

चाहती। अपने में वह जो है उसमें किसी को सुख न मिला, तो ऐसा सुख पाने का उसे हक़ क्या है? क्या गरज है ऐसे लोगों के पास माँग कर शरण पड़ने की? क्या ज़रूरत है दूसरे से उधारी के पदारथ से भुलावे रख दिखावा करने की !

कुंजिया बिलकुल नहीं समझता रधिया की बातें।

× × ×

कुछ दिन बाद।

कुंजिया ने जाकर देखा, रधिया के दरवाज़े पर एक रिक्शा खड़ा है। रधिया के घर में चीज़ें बाँधने के लिए रखी जा रही हैं। ट्रंक, बक्सा, बिस्तर बाँधा जा चुका है।

अवाक् रह गया। पूछा, "माजरा का है ?"

रधिया ने बिस्तर लपेटते हुए कहा, "मैं शाम बाज़ार जा रही हूँ। शरीफ़ ने वहाँ मकान लिया है। दोनों साथ रहेंगे।"

कुंजिया ने पूछा, "तू उस गँजेड़ी के साथ जायगी? वो तो तेरी पिटाई करता है। तेरे गहने ले गया ! बेच डाले…दारू पी गया…और तू उस बदमास के साथ…"

"हाँ, उसी नासपीटे के संग रहूँगी ! वो माताल है, मारता भी है, मगर… क्यों वह मुझे यों पीटने का साहस करता है? मुझे अपनी न मानता तो मुझ पर इतना ज़ोर दिखाता? पराये को कोई दो बात भी कड़ी बोलेगा ? मैं खानगी हूँ, रंडी हूँ…मगर उसके पास जिन्दा आदमी हूँ। साबुत आदमी ! खानगी रधिया ज़िन्दा है—यह बात वह जानता है, तभी मेरी गलती देख कर मुझ पर हाथ उठाता है।"

और फिर आईने में चेहरा देखने लगी। साड़ी की पिन ठीक करते-करते बोली, "तेरे पास मैं बस छाया हूँ। किसी और का भूत…उसकी नकल हूँ…मैं खुद कुछ नहीं ! तुम मुझे इतना पराया समझते हो ?

—"तू रधिया को प्रेम तो करता नहीं। उसमें दिखती गोरी को प्रेम करते हो। उस पार तेरी सती-साबितरी गोरी है और इस पार कोठे की छोकरी ! मगर मैं भी अलग हूँ, अपना कुछ है मेरा—यह तो कभी नहीं समझा तुमने !"

अब कुंजिया क्या कहे ?

रधिया बोली, "चलो, बाहर जाओ, ताला लगाना है ! घर वाले को चाबी पकड़ा देनी है।"

रधिया सामान रख रिक्शे में बैठ गई। कुंजिया की ओर देख आँचल में आँसू पोंछ लिये।

× × ×

अगला दिन···दुपहर में काम चल रहा है। खूब दनादन ! कुंजिया रोलर खींचता हुए ताल मिला कर गा रहा है—

'हो···ले···सा···!'

इसी बीच गाँव से सदानन्द बेहेरा आ गया। कान में खबर दी—"कलकत्ते में तू किसी औरत को लेकर बस गया है, यह बात जान कर गोरी दूजबर के संग चली गई। पिछले मंगसिर अमावस के दिन केवट साही के हरिया महारणा के भतीजे चेमा महारणा के साथ रह गई।"

कुंजिया एक-दो क्षण स्तब्ध रह गया। उसे अन्यमनस्क होता देख जान लिया कि वह पिछड़ रहा है। संगी ने कस कर पीछे से धकिया दिया।

फिर कुंजिया को होश आया। लोहे के रोलर से गली थरथरा रही थी। वह चिल्लाया—"हो···ले···सा···!"



हाथ

वह हाथ देखा करता है। शहर की दीवारों से बड़े-बड़े पोस्टर खींच कर ले आता। सड़क के किनारे एक ओर बैठ जाता। उसके बैठने की जगह एक न होती। जहाँ से भीड़ गुजरती, उसी ओर एक किनारे अपना पैसारा बिछा कर बैठ जाता है। पैसारा और क्या है, बस मैले-फटे कपड़े की बस्तानी! उस में किसी ज़माने की पुरानी चीकटभरी मुड़ी-तुड़ी एक-दो किताब सामुद्रिकी पर। किताबों के पन्ने पुराने हो गए। अक्षर घिस-पिट गए, साफ पढ़ना भी मुश्किल है उन्हें। सारे पन्ने टेढ़े-मेढ़े हो गए हैं। कवर का काग़ज़ एकदम फट गया है। पहले पन्ने पर छपी तस्वीर में आधी पता नहीं कब से ग़ायब है। तस्वीर का मतलब निकाल पाना अब मुश्किल हो गया।

इस के अलावा बस्तानी में है कोहिनूर प्रेस से छपी हनुमान प्रश्नावली किताब, खड़ीरत्न का लिखा पंचांग (खड़िरत्न-पंजिका), एक स्लेट, जगन्नाथ का छापा, एक दिवंगत किसी डिप्टी कलक्टर साब का दिया साटीपीटी, जो कि काँच में बँधा किसी पुराने फोटो जैसा दिख रहा है।

बस्तानी खोल कर सबसे पहले वह सर्टिफिकेट निकालता। गमछे से पोंछ कर ऐसी जगह रखता जहाँ सबकी निगाह पड़ती। फिर तीन रंगवाली जगन्नाथ की फोटो निकालता। सिंदूर-चंदन लगा-लगा कर फोटो में तीनों चेहरे दब चुके हैं। वह फोटो माथे से छुआता और बस्तानी के आगे रख देता। और तब तनिक गहरी आँखों से तिरछा कर आते-जाते लोगों को देखता।

लम्बी हड़ीली देह पर पड़ी होती पुरी की बनी रामनामी चादर। उसका छोर हवा में इधर-उधर उड़ता तो छाती के बड़े-बड़े और घने बाल साफ़ दिख जाते। उनके नीचे छाती की ऊँची-नीची मेंड़ स्पष्ट हो जाती। सिर के लम्बे बाल कानों के पीछे पीठ पर झूलते। कान पर खोंसा होता एक ताज़ा गेंदे का फूल!

दिन में ज़्यादातर वह अदालत के पास या कलेकटर की कचहरी के सामने वाले बरगद-तले बैठा मिलता है। परीक्षा के दिनों में कभी-कभी स्कूल के अहाते के पास भी आसन जमाता है। कोई मुक़दमा जीतेगा या नहीं, किसी की कितनी मियाद होगी, किसी को इस बरस किलास पार करने में सफलता मिलेगी या नहीं···लोग तरह-तरह की बातें पूछने आते। दक्षिणा पा जाने के बाद जिसे जैसा

कहना होता कह देता, हाथ देखते या पाटी पर कुण्डली बनाते और संक्षेप में बता देता। बात फिर जगह पर लगती तो ग्राहक नगद और चवन्नी-अठन्नी रख देता। पैसा माथे से लगाता और एक टिन के बंद बक्से में डाल देता। कोई-कोई धनी-मानी जुट जाता—मुकदमा जीतने के लिए मसान में संक्रांति के दिन महाकाली की पूजा कर ताबीज बाँधने की खातिर मोटी रक़म ले अंटी में खोंसता।

चिलचिलाती दुपहर। गरमी के दिन। काठजोड़ी की तपती बालू पर तैरती हुई जेठ की लू आ रही है। कचहरी के पास नदी-किनारे पर ऊँचे-ऊँचे दरखों में कुछ चमगादड़ धूप में छटपटा इधर-उधर तैरती चें-चीं करतीं। कोई मरकणा आवारा कूकर भूख और धूप में छटपटाता एक छोटे पेड़ की छाया में चारों पैर पसारे जीभ हिलाता हाँफ रहा है।

एक पतला साँवला-सा हाथ ज्योतिषी की ओर पसर आया। हाथ पर कतरा भर मांस भी नहीं। सिर्फ़ पैने-नुकीले हाड़ दिख रहे हैं। लम्बे रोंए और उभरी हुई नीली-नीली नसें। रक्तहीन अँगुली के छोर पर गन्दे नाखून साफ़ दिख रहे हैं।

हथेली को देर तक देखता रहा। इस के बाद अपनी दाढ़ी-मूँछ के जंगल से हाथ दिखा रहे आदमी की ओर कनखी से देखा। उस का चेहरा किसी आशंका में और भी अधिक स्याह दिख रहा था।

बात क्या है ?

खाँसी उठी अतः वह कुछ बोल नहीं पाया। देर तक खांसता रहा। उस के मुंह से एक लेंदा खून निकल पड़ा। लगा जैसे उस के सूखे हाड़ टूक-टूक हो रहे हैं। बेदम होने के कारण वह पत्ते की तरह हिल रहा है।

अपने स्वर को रूखड़ा करते हुए कहा, "तुम न बताओ तो क्या हुआ ! हाथ कह रहा है कि तुम्हें राजयक्ष्मा हो गया है। तुम्हारी आयु-रेखा दुर्बल हो गई है।"

मानो किसी ने उस दुबली काया पर ढेर सारी कालिख पोत दी है। अदृश्य में झूलते भविष्य के बारे में अशुभ संकेत से वह समूचा सिहर गया। घबराहट में छाती और ज़ोर से धड़कने लगी। खाँसी का एक दौर फिर आ गया।

ज्योतिषी ने उस हथेली को ले कर मलना शुरू किया। एक खास रेखा पर ज़ोर पड़ रहा था। गहराई से देखने लगा।

उसकी भाव-भंगिमा से लग रहा था मानो मैले हाथ की वह रेखा कोई पुते नाले की धारा है। खाली मैदान जैसी देह में कहीं लीन हो गई है और सपाट हथेली तक आ कर समतल हो गई। वह मानो उस हथेली को मसल कर साफ़ रहा है। उस मिटी रेखा को टटोल निकालने की कोशिश कर रहा है।

ज्योतिषी की आँख में पकड़ाई में ही नहीं आती वह रेखा। रोगी और भी निस्तेज हो गया। सूखी पलकें और भी गहरी धँसी दिख रही हैं। उसका छोटा

गन्दा चेहरा क्रमशः और सिकुड़ गया है तथा किसी छोटे बच्चे की तरह दिख रहा है।

"——तो मैं नहीं जी सकूंगा, पण्डितजी ?"

ज्योतिषी ने ग़ौर से देखा। देर तक अपना भावावेग सम्हाले रहा, फिर कुछ कहने के लिए सिर उठाया। होठों पर एक क्रूर हँसी···आंखों पर अस्पष्ट विद्रूप की तरह अस्पष्ट तीखा इंगित कोई !

रोगी के चेहरे की ओर देखने का साहस नहीं हुआ। सिर नीचे कर लिया। देखा, नीचे रखा है तीन रंग का जगन्नाथ फोटो। चन्दन और सिन्दूर के पहाड़-तले दुर्बोध्य देवता की अस्पष्ट मूर्ति उसके अनदेखे भविष्य की तरह उसे और भी स्याह दिखी। वह ठाकुरजी की ओर भी नहीं देख सका। उधर से आँखें फिरा कर बस्तानी में रखी किताबों की ओर देखने लगा। काली-कलूटी किताबों के पुराने पन्ने और भी डरा रहे थे। किस बाबा आदम के ज़माने के मैल और चीकट में से वे मिटते जा रहे अक्षर उसकी धुंधलाती जा रही लौ के अस्तित्व की बात याद करा रहे थे। हड़बड़ा कर फिर आँखें घुमा लीं काली स्लेट पर खिचीं उलटी-सीधी रेखाएँ—वह कुछ नहीं समझ पाया, फिर भी ग़ौर से उन्हें देखता रहा।

खाँस कर ज्योतिषी ने गला साफ़ किया।

रोगी समझ गया कि पण्डितजी कुछ बोलेंगे। कुछ सुनने में उसे डर लगा। फिर सिर उठा कर उसने ज्योतिषी की ओर देखा। चौड़े माथे के चमड़े पर उभरी दो नसें फूली-फूली दिखती रहीं। अचानक सिहर उठीं। कान में खोंसा हुआ गेंदे का फूल भी हिल गया। बोलने लगे। गालों की हड्डी-तले दिखते गड्डे दोनों भर कर फिर खाली हो गए। चेहरे की मांसपेशियाँ फूल उठीं। रोगी ने उस की सूखी आवाज़ सुनी—

"तुम्हारा हाथ कह रहा है···"

"क्या कह रहा है मेरा हाथ ?" कोई भयंकर इतिहास लिखा है यहाँ ? यह सब सुनने की बिलकुल इच्छा नहीं। फिर भी सुनना होगा।

"तुम्हें मारकेश है ! शुक्र महादशा का भोग तुम्हें नीचे ही नीचे लिये जा रहा है। यह जीवन-रेखा के लिए ठीक नहीं।" उसने रोगी से कहा।

रोगी काला स्याह पड़ गया। जज से मृत्युदंड सुनने के पहले कठघरे में आसामी का चेहरा जैसे सूख जाता है, रोगी ठीक वैसे ही सूख कर बिलकुल सफ़ेद पड़ गया।

उसकी खाँसी बुरी तरह बढ़ गई। खाँसते-खांसते वह दुहरा हो गया और ज़मीन पर हाथ-पाँव पटकने लगा।

कुछ देर बाद वह फिर थिर होकर बैठा। पूछा, "मैं और कितने दिन जी सकूंगा ? इसी माघ में बेटी परायी करने के लिए लगन निकलवायी थी। बस

वही एक है''''''उस जिलफ का क्या कहूँ ! पण्डितजी, उसे ठौर-ठिकाने करने के बाद कोई चिन्ता नहीं। आप के निहोरे करता हूँ, जरा ठीक से हाथ देख कर बताओ, मैं और चार महीने जी सकूंगा ?"

उसकी आवाज़ काँप रही थी। उसकी लाचारी देख ज्योतिषी के निरपेक्ष चेहरे पर कुछ ऊष्मा लौट आयी। वे सकपका उठे।

उनकी काली दाढ़ी पर जलती हुई आँखों में चमक दिखाई पड़ी। क्या कहूँ—सोचने लगे। देर तक किताब उलट-पुलटने के बाद थूक निगल मुस्कराते हुए बोले—

"बहुत दिन जिओगे। अगले दो वर्ष तक तो कोई इस देह में एक दाग़ भी नहीं लगा सकेगा। माँ चण्डी की दया से तुम्हारा रोग-शोक सब यों हवा में उड़ जायगा। तू ये अष्टधातु का बना सिद्ध तावीज पहन ले। ले, विपुव संक्राति के दिन बहुत मन्त्र-तन्त्र से सिद्ध कर अपने हाथ का रक्त चढ़ा कर मशान-चण्डी से लाया हूँ। जादू की तरह बड़े-बड़े रोगों को यह ताबीज अच्छा कर देगा।"

उन्होंने रोगी के दाहिने हाथ में मन्त्र पढ़कर ताबीज को एक मोटे धागे से बाँध दिया। रोगी के फीके चेहरे पर ललाई उभर आयी। उसके मैले गालों पर मांस की झलक दिखने लगी। हँसी में दोनों आँखें नाच उठीं। खुश हो ज्योतिषी के पाँवों में गिर पड़ा—

"सचमुच ! चंगा हो जाऊँगा पण्डितजी महाराज? सब भगवान की इच्छा ! पिछले बरस कितनी मेहनत कर परती ज़मीन दो एकर रेख डाली। और चार बरस भगवान की दया बनी रही तो उसमें से सोना उगाऊँगा !"

इसके बाद देवी के पूजा-पाठ निमित्त एक रुपया ज्योतिषी के पाँवों के पास रखा और चला गया। उसकी चाल से लगा, जैसे उसकी वह असाध्य बीमारी सचमुच छूट गई है। भाव-भंगिमा, बातचीत में उसकी जिजीविषा इतनी ! आश्चर्य में भर गए।

उसकी खुशी में खुश हो कर ज्योतिषी ने उसकी ओर आशीर्वाद में कहा—"माँ मशानचण्डी तुझ पर कृपा बनाये रखें !"

रोगी के जाने के बाद मेरा मन उस हाथ देखने वाले ज्योतिषी के पेशादारी ढोंग के विरुद्ध घृणा से भर गया। मन-ही-मन सोचा, उसे ज़रूर पुलिस में देना चाहिए। वहाँ से चला आया। तब से उस ज्योतिषी की गतिविधि पर नजर रखने लगा।

उस दिन की बात है। धुंधले आकाश पर रोशनी धीरे-धीरे घटती जा रही थी। मैंने जाते-जाते देखा, कालेज के पास एक पेड़ के नीचे बैठा वही ज्योतिषी एक युवक का हाथ देख रहा है।

शायद कोई कालेज छात्र है। देह की तुलना में उमर अधिक लग रही थी।

काफी बीमार और दुबला लग रहा था। छात्र की आँखें भावप्रवण। मानो इसीं में अपने जीवन की व्यर्थता का इतिहास व्यक्त कर रही हैं।

छात्र ने पूछा, "बताओ, वह मुझे चाहती है या नहीं ?"

ज्योतिषी ने मुस्काकर उसकी व्याकुलता देखी। उसका सारा मनोविज्ञान उनकी तेज़ और सतर्क निगाहों में अगले ही क्षण झलक गया।

कुछ क्षण हाथ को उलट-पुलट करने के बाद बोले—

"तुम्हारे हाथ में चार शंख हैं। पाँच शंख हों तो राज्य-प्राप्ति होती है—धन-प्राप्ति और पुत्र-प्राप्ति निश्चित है।

झुंझला कर छात्र ने पूछा, "मुझे राज्य, धन, पुत्र आदि कुछ नहीं चाहिए। बस यह बताओ—वह मिलेगी या नहीं? मैं उसे चाहता हूँ, हालाँकि मन-ही-मन। कभी खुल कर नहीं बताया कि कितना चाहता हूँ—कहूँगा भी नहीं।"

अचानक ज्योतिषी खूब गम्भीर हो उठे। ऐसे प्रेम की परिणति क्या होती है, उसे जानने में एक मिनट भी न लगा। जिज्ञासु की उत्कण्ठा बढ़ाने के लिए धीरे-धीरे रुक-रुक कर कह उठे—

"तुम्हारा हाथ कह रहा है…"

"क्या कहता है?" उद्ग्रीव छात्र ने पूछा। उसके व्याकुल स्वर से लग रहा था मानो ज्योतिषी के दो शब्दों में ही उसका सारा भविष्य झूल रहा है।

"वैसे विवाह में विलम्ब लगता है।" ज्योतिषी ने बेलाग शब्दों में कह दिया।

असहिष्णु छात्र ने पूछा, "मैं विवाह की केयर नहीं करता। मैं विवाह चाहता भी नहीं। मैं सिर्फ़ प्रेम करना चाहता हूँ। विवाह उसकी तुलना में कितनी छोटी चीज़ है। बताओ, वह मुझसे प्रेम करेगी या नहीं ? बस इतना ही है मेरा सवाल—"

ज्योतिषी चुप। कुछ देर तक तरह-तरह की रेखाएँ खींचते रहे। अँगुलियों की पोर पर हिसाब लगाने लगे और फिर बोले—

"हाँ, वह तुम्हें चाहती है। साँवली-सी है ? साथ पढ़ती है ?"

"ठीक हाँ…हाँ !" छात्र ने बात बीच में रोकी। उसका पीला उदास चेहरा चमक उठा एकदम !

कुछ सन्देह में पड़ कहा, "लेकिन वह तो मुझ से एक क्लास आगे है !"

ज्योतिषी ने कहा, "एक ही बात है। एक किलास आगे-पीछे का कोई मायने नहीं। वह तुम्हें खूब चाहती है। मन ही मन तुम्हारी बात सोचा करती है। तुम्हारे सिवा दुनिया में दूसरे किसी को देख ही नहीं पाएगी।" फिर छात्र के ललाट पर हाथ रख कर कहा, "तुम्हारे लिलार पर जो विद्या-बुद्धि की रेखा झलक रही है…उसकी करामात है…और फिर यह धन की तिरछी रेखा…"

फिर रोक कर छात्र ने कहा, "विद्या-फिद्या, धन-फन की बात छोड़ो ! आह

डोण्ट केयर। मैं चाहता हूँ, वह मुझे प्यार करे प्यार ! सिर्फ़ मुझे !"

ज्योतिषी ने उसकी बात पर सिर हिलाया—"ज़रूर प्रेम करेगी ! ज़रूर ! अगर न करेगी तो मैं हाथ देखना छोड़ दूंगा ! बाज़ी लगा लो चाहे बाबू !"

छात्र ने जेब से धेली (अठन्नी) निकाल ज्योतिषी के हाथ पर रख दी। चलने लगा तो ज्योतिषी ने कहा—

"मावस की रात तुम मेरे साथ कालियाबोदा के मशान चलना, मैं एक पक्की धूल दूंगा। उस धूल को ले जा कर पीछे-पीछे जाना उसके। चलते समय—जब उसका बायाँ पाँव उठा हो—धरती पर न टिका हो, तभी उस पर वह मन्त्र से सिद्ध धूल वशीकरण मन्त्र के साथ पढ़ कर फेंकना। देखना—समूची तुम्हारी बन जायगी। हाँ, इसके लिए देवी के वास्ते तीन नग नारियल, सवा सेर अरवा चावल, पाँच छटाँक शुद्ध घी, सवा गज का एक गमछा और बारह अंगुल का लाल वस्त्र······"

छात्र ने कहा, "ठीक है ठीक है, वो बाद में देखेंगे।" वह चला आया।

मैं पीछे-पीछे कुछ दूर तक आया। बुलाकर रोका (मैं उसके सारे सवाल सुन रहा था, सब कुछ देख रहा था) उधर उसको कुछ खबर भी न थी। मुझे देख तनिक सकुचा गया।

पास जाकर मैंने कहा, "आप से थोड़ा काम है। एक मुक़दमे में साखी भरनी होगी !"

"साखी !" वह आश्चर्य में भर गया।

"हाँ, साखी ! लोगों को ठगता है यह ढोंगी ज्योतिषी। अतः इसके नाम एक मुक़दमा दायर कर रहा हूँ। आप उस मुक़दमे में साखी बनें।"

"जनता का क्या नुक़सान करता है यह ?" कुछ झिझक में छात्र ने पूछा।

मैंने कहा, "बहुत कुछ ! आप क्या समझ नहीं पाते ? झूठी बातों में लोग बहक जाते हैं। कितनों का यह सर्वनाश कर डालता है ! कितने भले लोग इस की बातों का भरोसा कर अन्त में निराश होकर पोटासियम साइनाइड खा लेते हैं, किवाड़ बन्दकर मार्फिया घोंप लेते हैं या कालेज बिल्डिंग के दुमंज़िले से छलांग ! क्या आप को यह सब नहीं दिखता ? यह एक पब्लिक नुईसेंस है ! इसका फ़ैसला होना चाहिए !"

छात्र बेचारा ज्योतिषी के लिए हमदर्दी में भरा था। बोला, "इसमें उसका क्या क़सूर है ? लोग उसकी बातों में विश्वास क्यों करते हैं ? ग़लती तो उन लोगों की है !"

मैंने कुछ झुंझलाकर कहा, "आप-सरीखे पढ़े-लिखे युवक ही जब उसकी बातों में आ जाते हैं, तो साधारण अनपढ़ लोगों को दोष देने से क्या फ़ायदा ? आप ही यदि इन अन्धविश्वासों को उत्साहित करेंगे···"

छात्र अपराधी की तरह कुछ क्षण सिर नीचा किये रहा। फिर छलछलाये स्वर में उसने कहा, "आप लेकिन जितना बेवकूफ़ समझते हैं, मैं उतना बुद्धू नहीं हूँ। मैं बी० एस-सी०, फ़ाइनल का छात्र हूँ। फ़िज़िक्स में ऑनर्स है। मैं एकदम भौतिकवादी हूँ। कुसंस्कारों से मुझे घृणा है। अन्धी आध्यात्मिकता या अदृष्टवाद का मेरे लिए कोई अर्थ नहीं। मगर मैं, पता नहीं क्यों, इस ढोंगी ज्योतिषी को हाथ दिखाया करता हूँ! हाँ, आपने पूछा है। मैं जो कैफ़ियत दूंगा, उसका अर्थ आप जैसे दुरुस्त-चुस्त लोग कभी नहीं समझ सकेंगे। पसन्द की तो बात ही नहीं। जिसके हृदय को चोट लगी है, जिसका मन घायल है, टूट गया है दिल—वही मेरी बात समझ सकेगा!"

कुछ क्षण चुप रहकर बोला, "यह ज्योतिषी एक पक्का जुआरी है, झूठा है—इसकी हर बात में मनगढ़ंत गप्प है! मुझ से ज़्यादा अच्छी तरह कोई नहीं जानता। आजकल के कालेज के लड़कों के रंग-ढंग और उनके मन की हलचल को जो जानता है, वह इस तरह की अनेक उलूल-जुलूल भविष्यवाणियाँ कर सकता है। इसमें कोई बहादुरी नहीं। ये साफ झूठ है, कुल मिला कर धोखा देने का काम है। मगर इस झूठ का भी कभी-कभी आदमी के जीवन में काम पड़ता है। आदमी अपने टूटे मन को जोड़ने के लिए कई बार ऐसे झूठ का प्रलेप खोजता है—एक आकर्षक मीठी झूठ के नशे में वह निष्ठुर यथार्थ को भुला देना चाहता है।"

मेरी आवाज़ में अभियोग मर चुका था। आश्चर्य में भर मैंने पूछा, "तो आप जानबूझ कर यों ठगे जाना चाहते हैं?"

छात्र ने कहा, "आदमी अपना दुख-दर्द कुछ देर भुलाने के लिए कभी सिनेमा जाता है, रम पीता है, वेश्या के यहाँ जाता है और पता नहीं, क्या-क्या करता है। खूब पैसे खर्च करता है। उसी तरह मैं अपने टूटे मन को जोड़ने के लिए पैसे खर्च करता हूँ। खुद को भुलावे में रखता हूँ। एक बड़ी झूठ में आश्रय लेता हूँ। मैं जानता हूँ—यथार्थ मुझे कुछ नहीं दे सकता! परिस्थिति के निर्मम दबाव में पड़कर हम दोनों एक-दूसरे को कभी नहीं पा सकेंगे, मैं अच्छी तरह जानता हूँ। अतः इस मीठी झूठ के क्षणिक नशे में डूब कर एक तरह का आनन्द पा लेता हूँ। उसकी आलोचना करने की हिम्मत मेरे अन्दर नहीं है।"

मैंने कहा, "ठीक है। आप जिसे प्रेम करते हैं, उसे पाना भी चाहते हैं? तो उसके पास जाकर हँसते हुए उसे पाने का प्रस्ताव रखो! आदमी आदमी को चाहे, यह तो सुन्दर स्वाभाविक नियम है। मगर इसकी बजाय किसी ठग ज्योतिषी से परामर्श करने से क्या आपका उद्देश्य पूरा हो जाएगा? यह सब एक रुग्ण मानसिकता पर अत्याचार के सिवा और क्या है?"

छात्र ने कहा, "ना, ना···मैं उससे प्रेम करता हूँ, यह बात उसे बताना नहीं चाहता। बताने का मुझमें नैतिक साहस नहीं, सो बात नहीं है। मगर शायद वह

ठुकरा दे, इस डर से अपने मन की बात बता नहीं सकता। वरन् इसी विश्वास को लिये मन में आशा किये रहने में एक गौरव है, एक तरह का पाने का निरीह आनन्द है। हो सकता है वह काल्पनिक हो, मगर वह यथार्थ की रूढ़ व्यर्थता से कहीं अधिक सुख देता है। तभी मैं उस ठग ज्योतिषी को रोज़ पैसा दे कर झूठ कहलवाता हूँ। जिस क्षणिक मज़े के लिए आदमी दारू पीता है, नशे में धुत हो जाता है, उसी क्षणिक निरुपाय आनन्द के लिए मैं इस ठग की शरण आता हूँ। यही झूठ की सार्थकता है। इससे अधिक उससे मुझे कोई उम्मीद नहीं।"

मैं विस्मय में भरा सुनता रहा।

उसी दिन से रास्ते के पास उस ज्योतिषी को जब अपने धन्धे में देखता हूँ, मन में उन लोगों के प्रति गुस्सा नहीं होता। एक तरह की दर्दभरी सहानुभूति में भर जाता है मन।

मुझे लगता है, अन्धे अदृष्ट का सारा षड्यन्त्र इन हज़ारों काले-काले हाथों की अस्पष्ट पाण्डुलिपि में मानो लिखा है। और उसी वीभत्स षड्यन्त्र की नीच गोपनीयता को खोज निकालने का आश्वासन पाने के लिए हज़ारों असहाय लोग मानो इन ठग ज्योतिषियों में किसी दुर्दान्त अनुसंधानी को पा गये हैं।

●

अँगुली

भोर का समय। कंटनास के हरे पत्तों पर चाँदनी फीकी दिख रही है। पठानों की बस्ती में एक छान पर बैठ तोमिज मिर्यां के गंजे मुर्गे ने पंख फड़फड़ाकर बाँग दी—च क्···चक···ख अ···चक्···च क ! भीगी माटी का सुराग़ पाकर काँस के फूलों की भीड़ से कोई भेंटा भी चीं-चीं लगा रहा है उसके साथ···"

मागुणी चल पड़ा हाथ में हल थाम। कब बरसा होकर रुक गई थी। खेत की सूखी माटी में रेख खींचने के लिए ठीक मौक़ा है! गमछा अच्छी तरह माथे पर लपेट, पिछवाड़े में कनेर से एक डाल खींच ली। बटुए से सुपारी निकाल, फिर डोर खींच गाँठ लगा दी, डेढ़ हाथ लम्बी एक छड़ी बना ली, और फिर अपनी आदत के मुताबिक अधभूला वह गीत गाया मँझोली आवाज़ में—

"राम जे लखन हो गले मृगमारि !"

और वह चल पड़ा अपने खेत की ओर। गाँव के बाहर अमराई से एक और पतली डाल तोड़ दतौन बना डाली। चबाते-चबाते आगे बढ़ गया।

गाँव के छोर पर बड़े-से अँधेरे ढूह की तरह घना बरगद खड़ा है। उसी के नीचे ग्रामदेवी का सिंहासन है। थोड़ा हटकर मशान। कल रात से अधजले मुरदार को छाती पर रखे चिता धीमे-धीमे जल रही है। हिन्दू देवी-देवताओं पर विश्वास हो या न हो, उस पेड़ के नीचे पहुँचते ही मागुणीखाँ की छाती, पता नहीं क्यों, धक्क-धक करने लगती है। रास्ते में कहीं जीव-जन्तु का कोई शोर-शब्द नहीं। चारों ओर सुनसान, अनजाने मागुणी खाँ की हथेली दाहिनी ओर बैल की पूँछ पर चली गयी।

अचानक तभी बरगद की जटाओं के नीचे उसने देखा—दो मानवी छाया हैं। मागुणी खाँ की देह से ज़ोरदार पसीना बह गया, जीभ तालू से सट गयी। उसे याद आया—आज शनीचर है!

"इस बार सुख-शान्ति से लौट आया तो ठकुरानी माता को मुर्गों का जोड़ा बलि दूंगा।" उसने मनौती कर ली।

हिन्दू-मुसलमान दोनों धर्मों के सैकड़ों देवियों-देवताओं के नाम मन-ही-मन याद कर गया। सब को तरह-तरह की भेंट देने की बात सोचता रहा, इस घोर संकट से निजात पाने के लिए।

क्रमशः दोनों छाया दूर होती चली गयीं, मागुणी खाँ के होश ही गुम जाते कुछ देर में; मगर तभी दोनों छाया कुछ बोल रही थीं—उसने सुन लिया। कुछ हिम्मत आ गई मन में, तो कोई आदमी ही लगता है—कान लगा ग़ौर से सुनने लगा।

पिछली छाया कह रही है—

"छिगुनी अँगुली का मोल कितना?"

"जी, अनाप-शनाप बोल रहा है। कहता है, डेढ़ सौ रुपये से छदाम कम नहीं होगा।" दूसरा स्वर बोला।

"तो अँगूठा कितने में देगा?"

"पाँच नोट सौ-सौ के?"

"धत्!"

"जी, हुजूर माँ-बाप हैं! मैं आपसे झूठ बोलूंगा?"

"दाम ऊँचे हैं! लेने की बात कहो—"

"जी नहीं है, एक दाम कहे हैं—डेढ़ सौ नगद लिये बिना छिगुनी अंगुली नहीं देगा, चाहे सिर काट लें तो भी नहीं···"

निस्तब्धता—दोनों छाया चुपचाप। कुछ क्षण के बाद पहले स्वर ने कहा—

"ठीक है, देंगे। पेशगी ये बीस रुपये रखो। गिनकर बांध लो। हाँ···सारी बात याद रखना। समझे! खबरदार···!"

मागुणी को रुपयों की खनक साफ़ सुनाई दे रही थी। इसके बाद देखा—दोनों छाया एक-दूसरे की विपरीत दिशा में चलकर ओझल हो गईं—एक क्षण घबराकर खड़ा रह गया मागुणी खाँ। सोचा—जरूर ये भूत-प्रेत ही हैं! वरना स्याह अंधेरे में अँगुली की खरीद-फ़रोख़्त क्यों होती यहाँ?

लगता है आदमी की अँगुली का कोरमा बना कर शैतान की आज सौग़ात होगी? मगर उसे लगा, पहले आदमी की आवाज़ कुछ जानी-पहचानी लगती है। कहीं देखा है। रुक कर याद करने लगा। कुछ देर बाद याद आया— अरे, यह तो अपने गाँव के जिमींदार साहब हैं। एक बार लगान भरने गया था—दो दिन देर हो गई सो कठोर स्वर में हुकम दिया—एक कमरे में बन्द कर मिरच की धूंवा लगा दो—वह स्वर आज भी याद है! इतनी जल्दी वह कहीं भुलाया जा सकता है—वह इस्पाती स्वर! मगर यह माजरा क्या है, कुछ नहीं समझ पाया। दिमाग़ चकरा गया। हल मोड़ कर घर चला आया। मन से डर पूरी तरह मिटा न था, तुरन्त किसी ओझा से अपने को सुरक्षित करा लेना चाहा। मन्त्र फूंका गया, पाँव से सिर तक। अच्छा-सा ताबीज लेकर बांध लिया। धागे की जगह घोड़े की पूंछ के बाल थे उसमें।

× × ×

आज गाँव में ज़बरदस्त सभा है। पहले से ढिंढोरा पीटा गया था। भाषण देने के लिए कटक से नामी नेता भी पधारे हैं। सभा-स्थल पर भीड़ है। साँझ से पहले ही मागुणी खाँ सभा में हाज़िर था। सबके पीछे जाकर धीरे से बैठ गया, चुपचाप। चेहरे पर उत्सुकता थी।

गाँव में बार-बार ज़मीं-बंदोबस्त कर लगान बढ़ाया जा रहा है। रैयत और किसान इससे कितने क्षतिग्रस्त हो रहे हैं, भूखे-प्यासे लोगों की पसीने की कमाई का फ़ायदा उठाकर मुट्ठी-भर जमींदार कैसे पूँजी जमा कर रहे हैं—इसी का ब्यौरा लेकर सरकार के आगे माँग रखने के लिए प्रजा ने फ़ैसला किया है। ज़मीं-दार के अमानवीय अत्याचार, शोषण की नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए सभा बुलाई गई है।

तालियों की गड़गड़ाहट में सभा शुरू हुई। चारों ओर खूब गरमागरमी। जनता की आँखों में वर्ग-चेतना की पहली लहर दिख रही है। प्रकाश के नूतन संकेत।

"सुनो भाइयो ! भूखी शोषित जनता, किसान ! आज हमारा सर्वस्व लील कर पूँजीवाद की निष्ठुर जीभ आगे बढ़ रही है। आज अपनी देह की हड्डियों और इस पर बची चमड़ी को छोड़कर अपना कहने लायक हमारे पास कुछ नहीं सारी धरती पर। सब-कुछ जा चुका है हमारा, सिर्फ़ टूटी-फूटी यह ज़िन्दगी बची है। या फिर रह गया है यह बीमार, मुमूर्षु, जीर्ण और दलित अस्तित्व। भाइयो ! सर्वहारा मिलकर एक हो, इस अमानुषिक शोषण का प्रतिशोध लेना होगा—"

भाषण चले—जैसे तूफ़ान गुजर रहा हो। जन-समुद्र विचलित हो उठा, स्पन्दन !

जाग जाग मणिष भाई !
तमर समस्त हतियार एकत्र कर !
एक हुअ, एकत्र हुअ !

—याद रखो, स्वयं को शोषित होते जाने देना सबसे बड़ा पाप है। इसी अभिशाप में मानव-जाति पंगु हो जायगी।"

जनता ने प्रत्युत्तर दिया—

"शोषणवाद का ध्वंस हो !

पूँजीवाद का नाश हो !"

फिर भाषण चले—"उठो, रैयत भाइयो ! तुम्हारा खून-पसीना खाली धरती पर सोना उगा देता है, उसका अधिकार तुम से ज़मींदार छीन रहे हैं। अपना हक़ हम हर हालत में लेंगे। चाहे जान की बाज़ी लगानी पड़े। आगे बढ़ो ! रैयत संघ बनाना होगा।"

जन-सागर से आवाज़ आयी—"ज़मींदारी प्रथा लोप हो ! रैयत वर्ग की जय होगी।"

इसी समय सभा में एक कोई जीर्ण-शीर्ण आदमी खड़ा हुआ। चारों ओर नमस्कार कर कहने लगा –

"भाइयो ! हम सब मूर्ख हैं। गरम बातों में वह जाना सहज है। मगर भाइयो, दूसरों से स्वयं को ठगने देना उचित नहीं। हमारे पूर्वजों ने जो राह दिखाई है उससे हटना नहीं है। महाजनो येन गत: स: पंथा:। इन चिकनी-चुपड़ी कहने वालों की बातों में बहना नहीं। राजा, जमींदार यह सब भगवान की करनी हैं। उन्हें मिटा देना आदमी के हाथ में नहीं। इन्हें सम्मान देना ही मानव जाति का कर्तव्य है। ये अभी रैयत संघ बनाने की बात कह रहे थे, उसका भीतरी रहस्य क्या है, जानते हैं ?—दरअसल चन्दा इकट्ठा कर खाना चाहते हैं।"

जनता की आँखों में सन्देह अँज गया था। उत्सुकता में भर इधर-उधर एक-दूसरे की ओर ताकने लगे ! एक-दो ने वक्ताओं का भी समर्थन किया।

वक्ता और भी ज़ोर-ज़ोर से कहने लगे, "भाइयो ! ज़मींदार न होते, हमारा मान, इज्जत, धन, सम्पदा सब चोर, लुटेरों, डाकुओं के हाथ होता। ये हमारे सच्चे रक्षक हैं। इनके शासन के प्रतिदान में हम जो नाम मात्र का लगान देते हैं, वह तो हमारी कृतज्ञता का प्रतीक मात्र है।"

"ठीक···ठीक···" जनता ने अनुमोदन के स्वर में कहा।

वक्ता खुश होकर उत्साह में कहने लगे, "भाइयो, कोमल मीठी बातें करने वाले रैयतसंघियों का विश्वास कर लेंगे तो बिपद में पड़ेंगे। मैंने लम्बे अर्से तक इनके साथ काम किया है। मगर अब इनके सदुद्देश्य पर शंका हो गई। बाध्य होकर सम्बन्ध तोड़ना पड़ा। आप लोग इनकी बातें सुनेंगे तो भगवान के आगे द्रोही बनेंगे। क्योंकि भगवान के अंश से राजा अवतार लेते हैं। हमारी ग्रामदेवी बावती माई की भी हम पर गाज गिरेगी। गाँव पर आफ़त आ जायेगी। तुम्हें याद होगा, इन्होंने देवी के पास बलि के समय तरह-तरह के झंझट खड़े किये थे। पिकेटिंग की थी। इनके सहकर्मी के रूप में मैंने जो पाप किया था, उसका प्रायश्चित्त आज और यहीं करूँगा—इन्तज़ार करें।"

बच्चे-बूढ़े सब एक साथ कह उठे—

"माँ इन धर्मत्यागियों को खा जायेगी···खा जायेगी !"

वक्ता और तेज़ हो उठे, "ये देवी के शत्रु हैं ! कल मुझे बाउती माईने स्वप्न में कहा—गाँववालों को सावधान कर दो। इन लोगों को दूर करो, हटा दो। वरना इस बरस घर जलेंगे। हैजा-चेचक होगी। देवी की बहनें बसती···आयेंगी। मँझली बहनें मोतीझरी आयेंगी।"

सारी सभा सिहर उठी। सबने कहा, "हटाओ ! इन्हें भगाओ !"

वंक्ता ने जेब से लम्बी छुरी निकालकर कहा, "मुझ पर अविश्वास कर सकते हो। मगर अपने को सच्चा प्रमाणित करने को अभी आपके आगे अपनी छिगुनी काट दूंगा ! अपने खून की साक्षी दूंगा !"

उन्होंने छुरी की धार की जांच की। लालटेन के प्रकाश में भी उसकी धार चमचमा रही थी। बाउती देवी का नाम ले प्रणाम किया। छिगुनी को एक चोट में काट डाला। अँगुली छिटक कर देवी की वेदी के एक किनारे जा पड़ी। खून के छीटे चारों ओर फैल गये। सारी सभा अचम्भे में रह गई। सब-के-सब सिहर उठे। सबने सोचा—आदमी वास्तव में सच्चा है ! इसकी आत्मबलि ही अन्तर की निर्मलता का प्रमाण है।

सबका गुस्सा जाकर पड़ा कृषक कार्यकर्ताओं, पर ये ही हैं सारे अनिष्ट के मूल। क्रुद्ध जनता ने उन असहाय कार्यकर्ताओं पर आक्रमण किया—"धर्मद्रोही ! देश-द्रोही ! राजद्रोही !"

तभी दूर ज़मींदार साहब की सौम्यमूर्ति के दर्शन हो रहे थे। चेहरे पर कृत्रिम हास्य था। सबको दबाते हुए कह उठे—

"मेरे प्रिय प्रजाजन ! क्षमा मनुष्य का प्रधान धर्म है। शत्रु को भी मन-वचन-काय से क्षमा करने के लिए भगवान बुद्ध, ईसा मसीह आदि सबने मुक्त कण्ठ से उपदेश दिया है। भाइयो, इन्हें छोड़ दें ! ये हमारे अतिथि हैं। इन पर चोट न करो !"

क्रुद्ध जनता को ज़मींदार की उदारता एवं महानुभावता का परिचय मिल गया था। वह विमूढ़ हो गई।

ज़मींदार जी महाराज ने सबको सम्बोधित किया, हालांकि स्वर उनका शान्त और नम्र था—

"भाइयो ! बाउती देवी की दया है। धन्य हैं हम, वह हमें शुभ बुद्धि देती है। चलो, हम उनका अनुकरण करें।"

घुटने टेककर विगलित-नयन देवी की प्रतिमा की ओर प्रणाम किया। सब उनका शुक्रिया अदा करते हुए उनका अनुकरण कर रहे थे।

इसके बाद सामन्तजी सबको आश्वासन देकर कह उठे, "इन राजद्रोहियों पर किसी अत्याचार का हमें कोई अधिकार नहीं। अतः मैंने पुलिस की हिफ़ाज़त में मजिस्टेट साहब के इजलास में भिजवाने की व्यवस्था की है। व्यक्तिगत रूप में वे हमारे अतिथि हैं। इनके साथ उचित व्यवहार किया जाना चाहिए। हां, एक बात और—मैं इस वर्ष लगान का एक-चौथाई मां बाउती देवी के आसन पर विराट मन्दिर निर्माण करने के लिए खर्च करने को आपके आगे वचनबद्ध हो रहा हूँ, यह गांव के मंगल के लिए बहुत जरूरी है। आशा है आपकी सहायता, सहानुभूति मिली तो यह अभिलाषा जरूर पूरी होगी।"

श्रद्धा से सबको नमस्कार किया और अपनी गाड़ी में बैठ चल पड़े। सभा में छोटे से बड़े तक सब उनकी उदारता, सरलता एवं दानवीरता जैसे दैवी गुणों को देख मुग्ध हो रहे थे, भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे, चारों ओर से धन्य-धन्य की आवाज़ आ रही थी। ⁼गुणी खाँ सबके पीछे बैठा सब देखता रहा। सुबह की बात याद कर उसका समूचा अन्तःकरण चीख उठा विद्रोह में। बड़ी मुश्किल से बाहर से स्वयं को सम्हाल कर वहाँ से उठकर आ सका।

●

विराट् शिल्प-नगर खड़ा हो रहा है। तीस बरस पहले किसी ने कल्पना भी नहीं की थी—घने जंगल की कटाई होगी ! वहाँ सिर उठायेगी ईंट-पत्थर, सीमेंट-लोहे से बनी विराट् महानगरी—देस-बिदेस के बेसुमार लोगों के कोलाहल से भर जायेगी। रात रंग-बिरंगी कितनी ही लाल-हरी-सुनहली रोशनी में झलमला उठेगी सूने पहाड़ की तलहटी।

वो जो त्रिमूला पहाड़ की चोटी पर नीला, लाल, बैंगनी रंग का रोशनी का मेला दिख रहा है—जहाँ से बड़े-बड़े अफ़सरों के क्लब से शराब और मांस की गन्ध आ रही है—उसी के तले और आसपास के इलाक़े में थे कई जाति-उप-जातियों वाले आदिवासी गाँव, वस्ती वग़ैरह। गाँव-गाँव में जारी थे बारह मास में तेरह परव-त्योहार, मेले-ठेले, गीत-नाच, मजलिस···और फिर कभी-कभी कलह-तकरार।

खाँडा, फरसा, मार-काट की ताण्डव लीला। बासेली देवी-पूजा, चड़क देवी-पूजा, झामू यात्रा, हिरन या खरगोश का शिकार पाने की आशा में वन में चूयाँ-पूजा। बलि लगती, एक के बाद एक मुरगे, बकरी, पाड़े और फिर भैंसे की। बाजों की टंकार में समूचा वन-जंगल, पहाड़ गूँज उठता। महुए और काठ-चंपा के झाड़-तले डालखाई नाच होता—कमर में हाथ दिये लड़कियों द्वारा। लड़के भी साथ नाचते, बंशी बजा झुंड में घेरा बनाकर···।

रात में महाबली बाघ की गरज के साथ अहिराज साँप के मुँह में हिरन शावक की चीख सब को बेचैन कर देती।

साल में एक बार होता मेला—पौष माह के अन्त में धान-कटाई के दिनों में। लड़कियाँ आतीं नयी साड़ी पहन, टिकुली, रिबन, कंघी ख़रीदने के लिए। लड़के इशारा करते पेड़ के झुरमुटे की ओट में सीटी-सिसकार के ज़रिये। और फिर दृश्य बदल जाता।

एक बाघ मात उठा। अनेक लोगों, गाय-बैल को खा गया। हल्ला हो गया। बाघ मात उठा है—लोग डरकर गाँव-गली छोड़ भाग खड़े हुए। दूसरी जगह जाकर घर-बार बसाया। पोड़ू खेती (पहाड़ या जंगल में आग लगाकर फिर खेती करना) के बाद वहाँ फिर नये-नये गाँव, बस्ती बस गए।

पहले सरकारी खाद का कारख़ाना बिठाया गया। फिर आसपास के लोगों ने कई कल-कारखाने खड़े किये—आरा मशीन, स्टील फाउंड्री, शराब बनाने का कारखाना, सूत के धागे का कारखाना। सीटी बजते ही लोग चल देते काम पर। शिफ़्ट खत्म होते ही लौट आते। धीरे-धीरे कितना कुछ वहाँ पर खड़ा हो गया। दुकान, हाट, बजार, सिनेमा, थाना, कचहरी, डाकघर, स्कूल, कालेज, छापाखाना और देसी शराब की भट्टी। आदिवासियों को हरजाना दिया गया, दूसरे इलाक़े में जगह मुहय्या करा दी गई···। उनकी ज़मीन पर अब खड़ी हैं कितनी सुंदर कालोनी, बड़े-बड़े बैंक और बीमा कम्पनी की इमारतें। नक़्शा ही बदल गया है। उसके साथ ही आदमी भी। मगर सचमुच आदमी बदलता है या बदलेगा ?

पहले का वही आदिम गांव, कलह की जगह वहाँ दिखेगी दलबन्दी, हिन्दू-मुसलमान का दंगा, उड़िया-ग़ैर-उड़िया का छोटा-मोटा युद्ध, खून-खराबा, यूनियन यूनियन के बीच झगड़ा, मारपीट, फिर मज़दूर-मालिक विवाद। बड़े-बूढ़ों का कहना है—पहले आदमी कितना अच्छा था···। मगर आदमी कब था भला जो आज बिगड़ गया ? वह गमछा-कच्छा छोड़ पेंट-कमीज़ पहनता है, महुआ छोड़ देसी-बिलायती बोतल गटक रहा है ! कब वह एक-दम पूरा तुलसी-पत्ते-सा शुद्ध-पूत था ?

···हालांकि आज भी बदला नहीं वह आदिम जंगल मुक्तावशिष्ट—जो क्रमश: सरकता-सरकता जाकर कितनी दूर रह गया—जो लकड़ी के ठेकेदार के हज़ार हॉर्न बजाने पर भी दूर खड़ा है। आलस में जम्हाई लेता है—अपने बुझे अतीत को सुमिर-सुमिर कर···

सच, क्या चरित्र बदला है ?

× × ×

आज है रथयात्रा।···रज त्यौहार के बाद रथपर्व आया है। सुबह से रिम-झिम मेघ बरस रहे हैं। फिर कभी-कभी धूप निकल, देह में चुन-चुना जाती है। लोग पसीना-पसीना हो जाते हैं। हज़ारों लोग जगह-जगह से आये हैं शिल्पनगरी में रथ खींचने के लिए। पहँड़ी (देव-विग्रहों के पधारने की प्रक्रिया) सम्पन्न हो गई। तीनों ठाकुर निज आसन पर रथ के ऊपर विराजमान हो गए हैं। लोग-बाग रथ के रस्से थामे खड़े हैं। आगे की क़तार वाले लोग और आगे जाने के लिए धक्का-मुक्की कर रहे हैं। पुलिस लाठी से गोल घेरा रथ के चारों ओर बना कर सतर्क है—ताकि रथ खींचते समय कोई दुर्घटना न होने पाये। अनेक बाबाजी, माताजी रथ के आगे चँवर डुला रहे हैं। कुछेक विदेशी श्वेतांग संन्यासी करताल बजाते रथ के आगे नृत्य कर रहे हैं। सबकी आँखें चकाडोला (विशालनेत्र जगन्नाथ) पर निबद्ध हैं। पण्डित-गण शास्त्र-पुराणों से श्लोक बोल रहे हैं—

"रथे तु वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ।—"

रथ में वामन मूर्ति जगन्नाथ के दर्शन के बाद आदमी मुक्ति पा जाता है, पुनर्जन्म नहीं होता। ऐसा सुलभ मुक्ति-फल छोड़े कौन ? लोगों में खींच-तान जारी है—रथ का रस्सा पकड़ने के लिए । इसी में चल रहा है भजन-कीर्तन गीत शंकराचार्य का "जगन्नाथ स्वामी नयन-पथ-गामी" और सालबेग का "जगबंधु परि जणे सामंत नाहिं नाहिंत" आदि श्लोक व भजन ।

सबको इन्तज़ार है कब रथ चलेगा। श्रीजगन्नाथ मन्दिर से मौसी माँ का छोटा-सा मन्दिर कोई एक-दो फ़र्लांग होगा । बस वहाँ तक पहुँचा दें, फिर सब की छुट्टी। अपने-अपने घर लौट जायेंगे। खा-पीकर दिन-भर की थकान मिटायेंगे।

मगर हुआ क्या ? अभी तक छेरा-पँहरा (चन्दन-चर्चित सुगन्धित जल का रथ के चारों ओर छिड़काव तथा रथ के आगे स्वर्ण सम्मार्जनी से महाराज द्वारा बुहारने की विधि) अभी तक सम्पन्न नहीं हुई ! रथ चलेगा कब ? यहाँ एक ही रथ में तीनों देव—श्री जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा गुंडिचा-गृह (जगन्नाथजी की मौसी का गृह) तक जाते हैं । नंदिघोष, तालध्वज एवं दर्पदलन की तरह के (पुरी वाले बड़े-बड़े) तीन रथ नहीं। रथ पर पताका फर-फर उड़ रही है। बीच-बीच में मेघों की बौछार । फिर वही धूप की धूप। लोग-बागों को परेशानी हो रही है।

तभी यहाँ के स्थानीय श्रीमन्दिर के प्रतिष्ठाता और इस रथ-यात्रा के पृष्ठ-पोषक नामी कंट्राक्टर व खान के पट्टेदार बांछानिधि परिड़ा, एक खुली जीप में जुलूस बनाकर आ पहुँचे । पण्डितजन उनका स्वागत-सत्कार कर फूल-चन्दन से छिड़काव कर उन्हें रथ पर लिवा ले गये। कुंभ-कढ़ाई की गई सफ़ेद रेशमी धोती पहने, रेशमी कुरते के ऊपर ब्रह्मपुरी सिल्क की चादर डाले परिड़ाजी ने रथ पर खड़े होकर सबको हाथ जोड़ नमस्कार किया। उनके माथे पर चन्दन की तीन रेख दूर से ही झलक रही हैं । चिकने काले मुखमण्डल पर पसीने की बूंदें दूर-दूर तक निगाहों में पड़ जाती हैं ।

पण्डितजी ने उन पर और रथ पर गंगाजल का छिड़काव किया। इसके बाद उनके हाथ में बढ़ा दी सोने का पानी-चढ़ी पीतल की सींक वाली झाड़ । परिड़ा जी छेरापँहरा सम्पन्न करने जा रहे थे कि तभी सारी जनता चिल्लाने लगी—

"ना-ना ! वे बुहारी नहीं देंगे। वे बुहारी देंगे तो हम रथ नहीं खींचेंगे।"

पण्डितजी ने हाथ जोड़कर कहा—

"छेरा-पँहरा न होगी तो रथ चलेगा कैसे ? कितनी देर हो गई ? यहाँ तो रथयात्रा जब से शुरू हुई है परिड़ाजी ही छेरा-पँहरा करते आये हैं । यह तो यहाँ की प्रचलित प्रथा है, कोई नयी बात तो नहीं ।"

मगर जन-समुद्र अटल-अचल खड़ा रहा ।

"ना, वे बुहारी नहीं देंगे।"

परिड़ाजी बुहारी को रथ की बाड़ के सहारे टिकाये चुपचाप खड़े हैं। बुहारी के मुट्ठे पर सूरज की किरणें सोने-सी झलक रही हैं।

पण्डितजी ने हाथ जोड़कर कहा—

"क्यों, क्या हो गया ?"

समवेत आवाज़ आयी—

"ना, वे पापी हैं। वे झाड़ नहीं देंगे।"

पण्डितजी ने हाथ जोड़कर पूछा—

"क्या पाप किया है, आप लोग ही बतायें !"

समवेत जनता ने कहा—

"हम सब नहीं जानते। पर वे पापी हैं पापी ! महापापी !"

परिड़ाजी के छः भाई नीचे खड़े अब तक सारी बातें सुनते रहे। एक-एक कर वे सीढ़ियों से रथ पर आ गये, मँझले भाई ने हाथ हिला कर सब को धीर-स्थिर होने को कहा। खूब ऊँची आवाज़ में बोले—

"भाई ने क्या पाप किया है, आप खुल्लमखुला क्यों नहीं कहते ? वे यदि दोषी प्रमाणित होंगे, हम सभी यह मन्दिर, यह रथ छोड़ चले जायेंगे। वैसा न कर किसी भले आदमी पर लांछन लगा रहे हैं ? यह क्या ठीक है ? उन्होंने क्या किया है ? चोरी-नारी-दारी ?"

"ना-ना, वो सब कुछ नहीं। हम वैसा कुछ न जानते हैं, न सुना है। मगर वे पापी हैं। अलबत्ता पापी हैं।"

"क्या वे दारू पीते हैं ? या कोई और नशा करते हैं ? कोई रेप, मर्डर, जाल-साज़ी, चारसौ बीसी ? गोहत्या, ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या ?" मँझले भाई अरबिंद परिड़ा ने पूछा।

"ना-ना, ये बात हम नहीं जानते। पर वे पापी हैं। हमारा मन कहता है, वे पापी हैं। इतने लोगों की ऐसी धारणा बनी कैसे ? वे पापी हैं। ज़रूर पापी हैं !" जनता ने उत्तर दिया।

"न कोई बात, न चीत···बस कह दिया कि वे पापी हैं ! क्या पाप किया है ? प्रमाण दें। उन्होंने लोगों के लिए सर्वस्व दिया है। पाँच लाख खरच करके यहाँ यह जगन्नाथ मन्दिर बनवाया है। इतने बड़े शहर में एक मन्दिर तक नहीं था। सिखों का गुरुद्वारा, ख्रिस्तानों का गिरजा, मुसलमानों की मस्जिद थी। मगर हमारा कुछ भी न था। मन्दिर बनने के बाद नीम की लकड़ी मँगवा कर शास्त्र-विधान के मुताबिक तीनों देव-विग्रह बनवाये। हृषीकेश से तीन महात्माओं को बुलाकर प्राण-प्रतिष्ठा करवायी। इतना ही नहीं, इस रथयात्रा के लिए हर बरस तीस-चालीस हज़ार का खरचा करते आ रहे हैं। उन्हें कह रहे हैं पापी ! तीनों विग्रहों के लिए अब लाख रुपये के अलंकार बनवा दिये हैं। बाहुड़ा-यात्रा

के समय रथ पर तीनों ठाकुर सोने के वेश में सजे होंगे, आप अपनी आँखों देखना। वे हैं फिर भी पापी ! तो धर्मात्मा फिर कौन हुआ ?"

मगर जनता भी ज़िद्दी ठहरी। एक ही रट "वे पापी हैं !" भीड़ में से किसी ने कहा, "उन्हें देखकर ही लगेगा, वे पापी हैं। उनके भाई, आप लोग भी सब पापी हैं !"

इसी बीच दूसरे ने थोड़ी धीमी आवाज़ में कहा—

"देखो न, कैसे सत भैया वाले मोटे-सोटे बन्दरों की तरह हट्टे-कट्टे चिकने-चिट्टे दिख रहे हैं ! मूंछ कली का कहना ही क्या ? ये सब पापी हैं !"

छोटे भाई दीनकिशन परिड़ा बोले—

"भाई ने क्या नहीं किया आप लोगों के लिए ? हमारे गाँव में और इस शहर में—दो-दो स्कूल चालू किये। कालेज में लड़कियों के रहने की व्यवस्था नहीं थी। बड़े भाई ने पैसे दिये—वो सुविधा करवा दी। शहर में दो-दो अस्पताल खुलवा दिये। कितने ही ग़रीब लड़कों को पढ़ाई के लिए रुपयों से मदद करते हैं, जो सब की कुछ-न-कुछ मदद करते हैं उन्हें पापी कहते समय जीभ कट नहीं जाती ?"

मगर लोग वैसे ही ज़िद पकड़े है—"ना, वो पापी हैं ! वे महाप्रभु के आगे झाड़ू देंगे तो हम रथ नहीं खींचेंगे।"

झीलपानी गाँव के मुखिया अँइठू साहू कह उठे—

"ठहरो, मैं बताता हूँ, जी···वे पापी नहीं तो धरमावतार हैं ? भले आदमी होते तो करोड़ों के मालिक बन पाते ? बस···एक ही बात सब समझ लें। बताइए, इस ज़माने में सच के बल पर कोई इतना धन कमा सकेगा ? यह हमारी कालोनी के हेडमास्टर को देखें। कितनी पढ़ाई नहीं की ? तीन-तीन विषय में एम···ए किया है, मगर हुआ क्या ? खपरैल के घर की मरम्मत भी नहीं कर पाते। पानी झरता है बरसा होते ही। हाँ, करोड़पति बन जाना सहज है।"

बॉयलर-मिस्त्री अप्पाराव बोल उठे—

"जी, सबने देखा है, पन्द्रह वर्ष पहले सेठ ओंकारमल की गोदाम में पच्चीस रुपये महीने की तनख्वाह पर काम करते थे, इन पन्द्रह वर्षों में इतने घर-बार, जमीन-जायदाद, मन्दिर, स्कूल, अस्पताल कैसे हो गए ? जादू या मंतर ?"

सब अप्पाराव की बात में हाँ भर रहे हैं। "हाँ, हाँ, ठीक तो कह रहे हैं। खरी-खरी कह दी है। असल जड़ तो यहीं है।"

"अक्कल और हिम्मत के बल भाई साहब ने पैसा कमाया है। जाल-फिसाद या जुआ-चोरी से नहीं। धनी होना कोई पाप है ? इस शहर में हम से बढ़कर धनी लोग हैं। चिरंजीलाल मरवाड़ी, सरदार मलिकासिंह, कंट्राक्टर ए० के० बोस को देख लें ! कोई भी इन में लोगों के लिए पैसा-धेला नहीं देता। हम

अपनी कमाई के धन में से लोगों के लिए खरच करते हैं—हम पापी हुए ! एक उड़िया भाई ने कुछ पैसे कमा लिए, वह बन गया पापी ! कहाँ, यह बात सिख, मारवाड़ी, मुसलमानों को तो नहीं कहते !"

स्मेल्टिंग-मिस्त्री नरी पाटजोषी ने कहा—

"बस, बस करो ! भगवान को कोई और आदमी नहीं मिला, इन्हीं के माथे पर सारी अक्कल भर दी !"

लुहाकिला गाँववाले बाबुला कन्ध ने कहा—

"नहीं जी, बात वो नहीं···फ़िलहाल इस वक़्त झाड़ू कौन लगायेगा ? झाड़ू दिये बिना रथ चलेगा कैसे ? भूख के मारे जान निकल रही है सबकी ।"

छोटे भाई बोल उठे—"क्यों, क्या हो गया ? बड़े भैया करेंगे छेरा-पँहरा ! कोई और करेगा ? पिछले पाँच बरस की रीत चली आयी है । आज वही होगा ।"

मगर सब चिल्ला उठे—"नहीं···नहीं···"

"तो कौन करेगा छेरा-पँहरा ?"

एक ने उत्तर दिया—

"ज़िलाधीश को बुलाया जाय, वेश बदलने पर वे ठीक जँच जायेंगे !"

दूसरे एक ने स्थानीय एम.एल.ए. का नाम सुझाया । मगर लोगों ने नापसन्द कर दिया ।

"आज ये हैं, कल कोई और आयेगा, वह कौन होगा कौन जाने ? मुसलमाँ या खिरस्ताँ कोई ठिकाना है ?"

रुक्मिणी कॉलोनी के एक मास्टर बोल उठे—

"हमारे पुराने राजा को बुला लेते तो कैसे रहता ? वे पगड़ी बाँध पोशाक पहन आयें तो खूब दिखेंगे, उनकी क़ीमत भी कोई कम नहीं । हालाँकि अब वे नशे-पानी में कुछ-कुछ आ गए, बैठक में रहते हैं । मगर किसी दिन इस इलाक़े के वे ही राजा थे । उनकी करामात कम न थी । सिपाही, पलटन, दल-के-दल हाथी-घोड़े, रोल्स रायस गाड़ी, सब-कुछ था । अब हाथीशाल, घुड़शाल और कचहरी··· सब के छप्पर से छान उड़ गई है, महल के पिछवाड़े आधा ढह गया है । फिर भी राजा का बच्चा राजा ही तो होगा ! बिहार-उड़ीसा के जंगी लाट ने उन्हें राँची-दरबार में बुलाया था । उन्हें के.टी. 'नाइट' की उपाधि मिली थी । उनके पिता, बूढ़े राजा जी को सी. आई. ए. (याने कम्पेनियन ऑफ़ इण्डियन एम्पायर) की उपाधि से विभूषित किया गया था । वे कम आदमी नहीं !"

आरा मशीन के टाइम-कीपर बाबू सब सुनते रहे । अब बोले—"राजा का एक पुराना हाथी है । खाने को न मिला, सूख कर कंकाल बना फिरता है । उसे ट्रक में लाद कर लाया जा सकता है । फिर तो राजा जी हाथी के हौदे पर बैठ आराम से रथ तक जा सकेंगे । ट्रक में लाये बिना पाँच कोस चल कर हाथी आ

नहीं सकेगा।"

सब ने उनकी बात जोरदार ठहाके में हँस कर ऊपर-ही-ऊपर उड़ा दी। एक ने उनमें से कहा—

"हें-हें राजा! कैसे राजा! कहाँ स्वाधीन कलिंग साम्राज्य के वीराधिवीर नवकोटि कलवर्गेश्वर गजपति महाराज और कहाँ हमारे शेरगढ़ मुलक के शराबी राजा—जो दिन में भी आकाश देख तारे गिनते हैं—के.टी.सी.आई. हैं!···वो बकवास छोड़ो! अब रथ कैसे खींचेंगे, वह बात करो! लोग हैरान हो रहे हैं। दिन का एक बजने को आया!"

परिड़ाजी तमतमा कर रथ से नीचे उतर आये। बोले, "मुझे नहीं चाहिए। मैं झाड़ू नहीं लगाऊँगा। रथ चले या न चले, मेरा इसमें क्या आता-जाता है। मैं घर चला।"

उनके भाई भी पीछे-पीछे चल पड़े।

लोग वैसे ही रथ का रस्सा थामे खड़े हैं। देखा यह तो घोर विपद आ गई! रथ खींचे बिना घर लौटें क्या मुंह लेकर? पुनर्जन्म के संकट से भी उद्धार हो तो कैसे? वे आपस में एक-दूसरे का चेहरा देख फुसफुसाने लगे। इधर भूख और उधर धूप में अकल गड़बड़ा रही है!

अन्त में तय हुआ—इस बरस परिड़ाजी झाड़ू लगायें। अगले बरस की अगले बरस देखी जायगी। आनन्द में एक बार 'हरि बोल' ध्वनि में शहर काँप उठा। 'घर्-घर्' नाद में रथ आगे बढ़ चला।

•

वागर्थ

महाकवि कालिदास ने लिखा है—वागर्थ परस्पर जुड़े हुए हैं। वाक् या शब्द के साथ अर्थ का अंगांगी सम्बन्ध है, वैसे ही जैसे शिव-पार्वती का सम्बन्ध है। हम अब 'अर्थ' को 'मायने' म समझ रुपया-पैसा कहते हैं। फलतः वाक् के साथ अर्थ की दूरी बढ़ती जा रही है, जो वाग्देवी का भक्त है वह लक्ष्मीदेवी द्वारा परित्यक्त, वर्जित है। मगर अब दशा बदल गई है, लक्ष्मी और सरस्वती सौत नहीं रहीं—सरस्वती लक्ष्मी की परिचारिका में परिणत हो गई हैं।

गदाधर बाबू आज सुबह, पता नहीं क्यों, सोच रहे थे कालिदास की बात। अचानक तभी आ गये प्रकाशक खगेश्वर बाबू! गदाधर बाबू नामी-गरामी लेखक और समाजसुधारक हैं। कलिंग साहित्य-संसद् के सभापति भी हैं। लेखक-कलाकारों के लिए कई आन्दोलन चलाये हैं।

खगेश्वर बाबू ने नमस्कार किया। गदाधर बाबू कुछ बोलें, इससे पहले ही कुर्सी पर लध् से बैठ गये। चेहरे का पसीना पोंछकर बोले—

"आप हम प्रकाशकों के विरुद्ध क्यों पड़े हैं? क्यों चलाया है यह आन्दोलन?"

गदाधर बाबू बोले—

"प्रकाशक? मैंने तो उनके विरुद्ध मुंह नहीं खोला! मैं तो सिर्फ़ इतना कहता हूं—लेखक के हित की ओर ध्यान दिया जाय!"

खगेश्वर बाबू बोले, "एक ही बात है। वही तो है!"

जरा आश्चर्य में भरकर पूछा—

"एक ही बात है? सो कैसे? लेखकों का कुछ भला होने पर प्रकाशकों का कोई नुक़सान हो जायेगा?"

'होगा नहीं? परोक्ष में?" खगेश्वर बाबू का जवाब था।

गदाधर बाबू ने पूछा, "नुक़सान क्यों होगा! मैंने तो कभी ऐसा सोचा भी नहीं। लेखक-प्रकाशक दोनों एक-दूसरे के परिपूरक हैं, सहायक हैं। क्यों सोचते हैं कि वे परस्पर-विरोधी हैं? प्रकाशक न होते तो उड़िया साहित्य जहाँ पहुँचा है, वहाँ पहुंच पाता? साहित्य को प्रकाशकों की देन कम नहीं!"

खगेश्वर बाबू ने सिर पर हाथ फिरा कर कहा—

"हाँ, यह तो ठीक है। मगर पूछता कौन है प्रकाशक को? सारे पुरस्कार

और फूलमालाएँ तो लेखकों को मिलीं। प्रकाशक के भाग्य में सिर्फ़ गालियाँ, बदनामी…"

"ना, ना, ऐसा न कहें खगेश्वर बाबू! प्रकाशक द्वारा प्रकाशित किसी किताब के लेखक को सम्मान या पुरस्कार देने से इसमें क्या प्रकाशक का गौरव नहीं?" गदाधर बाबू ने पूछा।

"हाँ-हाँ, सो तो है।" इतना कह खगेश्वर बाबू ने कुर्सी कुछ पास खींचते हुए धीमे से सुना दिया—

"जी, सुनिए…बात कुछ गुप्त है। ज्यादातर प्रकाशक लेखक को कोई रॉयल्टी नहीं देते। 'रुपये मिले'—एक काग़ज़ पर लिखवा कर कुछ रुपये देकर चले आते हैं। वे सब ठग हैं। मगर हमारी बात सुनता कौन है? हमारा 'शुद्ध साहित्य मन्दिर' किसी लेखक का एक पैसा भी बाक़ी नहीं रखता। हर बरस हम पाई-पाई का हिसाब कर देते हैं। अब पूछ लें। और जितने दिख रहे हैं—एक-एक बगुला भगत हैं। एक भी भला मानुस नहीं। अतः आप जो कह रहे हैं, बात बिलकुल ठीक है। मैं आपके मुंह पर बड़ाई नहीं करता, आपके परोक्ष में सबसे इसका ज़िक्र किया करता हूँ। चाहे पूछकर देख लें। मेरी बात सच न हो तो कह देना—खगेश्वर झूट्ठा है!"

इसके बाद तनिक सहज होकर बैठे। गला खँखार कर साफ़ किया, "बापू ने मना कर दिया है—"

खगेश्वर बाबू ने कहा, "जी हाँ, सचमुच! और नहीं तो क्या? पिताजी ने एक दिन तीनों भाइयों को बुलाकर बताया, 'प्रकाशक का धन्धा करते हो करो, मगर एक बात याद रखना! लेखक को कभी ठगना मत! लेखक और प्रेस के कर्मचारी हैं हमारे हाथ-पाँव।' मैंने बापू से पूछा—'तो कब और किसे ठगें? बिजनेस चलेगा कैसे?' बापू ने बताया, 'ठहरो! यों उतावले क्यों हो रहे हो! राह बताये देता हूँ। सरकार है! उसे चाहे जितना ठग लेना। टैक्स, आयकर… वग़ैरह जितनी मरज़ी ठगना। सेल्स-टैक्स जितनी मरज़ी उड़ा देना। डी.पी.आई., म्युनिसिपैलिटी, बिजली विभाग…इन सबको ठगने में कोई हर्ज़ नहीं।' जी, हमारे पिताजी तो साल भर हुआ गुज़र गये। मगर उनकी बात एक-एक तोला-माशा-रत्ती मान रहे हैं। पिताजी की नीति से ही तो बिजनेस चल रहा है। चाहे यह बात पूछकर पता कर लें। झूठ हो तो हमें बोलना।" कहकर खगेश्वर बाबू खड़े हुए और चले गये।

गदाधर बाबू सोचते रह गये—'क्या यह सच है खगेश्वर की बात? या मुझे सीदा-सादा देख उल्लू बनाकर चलते बने? सब जानते हैं वे धनी आदमी हैं इस शहर में, खूब ज़मीन-जायदाद, बाग़-बग़ीचा…यहीं नहीं, और कई जगह पर हैं। ज़मीन पर मन नहीं भरा तो जल के बीच—महानदी के कछार में, ज़मीन लीज

लेकर ककड़ी, बैंगन, टमाटर तोरई, भिंडी पैदा कर रहे हैं। एक ट्रालर पारादीप में डालकर मछली के धन्धे में भी हैं। इतनी ज़मीन-जायदाद कहाँ से आ गई ? सत् उपाय से या असद् उपाय से या फिर जादू-मन्तर करके ? या कोई इन्द्रजाल रच दिया ?' सोचते-सोचते उनका दिमाग़ ही चकरा गया। कोई ठौर-ठिकाना ही नहीं मिलता। गदाधर बाबू को लगा 'वास्तव में साहित्य (या वाक्) और अर्थ (रुपये-पैसे) के बीच अन्तर जितना बढ़ता जा रहा है, उधर वाक् और अर्थ (या मायने Meaning) में भी अन्तर उतना ही ज्यादा हो रहा है। साहित्य क्रमश, अर्थहीन और दुर्बोध्य होता जा रहा है। कुछ दिनों में तो शायद यह बिलकुल अबोध्य बन जाय।'

खैर जो हो, खगेश्वर बाबू के पिता सच्चे आदमी थे। अच्छे लेखक थे, पण्डित आदमी थे। 'अ' अनुप्रास में दो सौ पन्नों का विशाल काव्य लिख गये हैं। छपवाया था। खगेश्वर बाबू लेकिन खूब चालाक और मामलातकार आदमी लगते हैं। उनकी पृथुल काया शायद इसके लिए कुछ हद तक उत्तरदायी है।

उन्होंने अपने स्वजनों के नाम पर खूब किताबें छापी हैं। अपने 'शुद्ध साहित्य मन्दिर' के वे लेखक भी हैं, प्रकाशक भी। अतः अधिक किसी को रॉयल्टी देने का सवाल नहीं। इस मामले में रास्ता साफ़ है। बाक़ी दस से पन्द्रह सैकड़ा किताबें बड़े-बड़े सरकारी अफ़सरों, भूतपूर्व एवं वर्तमान अध्यापकों, शिक्षकों की उन्होंने छापी हैं। वे लोग ही तो 'पुस्तक चुनाव समिति' के सदस्य हैं, चेयरमैन हैं, सेक्रेटरी हैं। उनमें कोई-कोई तो देश में भुवनेश्वर से दिल्ली तक हर कमेटी के मेम्बर हैं। अतः उन्हें चिन्ता क्या ? चैन से बैठे हैं। हाल ही में उनकी प्रकाशित किताबें लाखों रुपये की बाढ़वाले इलाक़े में गई हैं। गोदाम ख़ाली हो गई। जो लेखक हैं, वही विचारक हैं, वही ख़रीददार भी; उन्हें चिन्ता क्या ?

पहले हालांकि बड़े-बड़े लेखकों की कुछ किताबें छापी थीं, मगर वो पुरानी बात है—उनके पिता के ज़माने की। कुछ बड़े-बड़े लेखकों से लाकर किताबें छापीं। आजतक वे चल रही हैं। तब यों कमेटी, बोर्ड, लाइब्रेरी वाला झंझट न था। बहुत कम किताबें छपतीं, अच्छी किताबें ही छापते। इतने दाँव-पेंच, चालबाज़ी न थी। किताब का मतलब किताब होता था। इसमें यों कुबेर का ख़ज़ाना ही मिल जाएगा, सो बात भी न थी। लेकिन ज़माना बदल गया। गदाधर बाबू ने देखा, इस ज़माने में साहित्य-फाहित्य नहीं चलेगा। ज़ोर जिसका, साहित्य भी उसी का।

पूजा-दिवाली हो गई। किताब वालों की एक सीज़न ख़त्म। सुबह नौ बजे गदाधर बाबू ताज़ा पत्रिका पर नज़र फिरा रहे थे। वयोवृद्ध साहित्यकार बटकृष्ण महान्ती छड़ी टेकते-टेकते आ पहुँचे। गदाधर बाबू खड़े हो गए। सिर झुकाकर नमस्कार किया। हाथ पकड़ पास की कुर्सी पर बिठाया, विनय में झुककर पूछा, "जी, बात क्या है ? सब ठीक-ठाक है ?"

वटवावू ने निराशा में कहा, "ठीक और क्या होगा ? अस्सी पार कर गया। पैसे की कमाई नहीं । अब दमा अधिक हो रहा है । ज़ोर पकड़ लेता है।" कहते हुए खाँस उठे । हाँफने लगे इतने में।

गदाधर वावू ने कहा—

"अभी-अभी दिवाली गई है। रॉयल्टी तो एकमुश्त मिली ही होगी !"

वटवाबू ने करुण दृष्टि से देख कूँथते हुए कहा—

"कुल पैंतीस रुपये दिये थे।"

"क्यों ? आपकी कितावें तो वी. ए., एम. ए. में चलती हैं। क़ीमती किताबें हैं। पैंतीस रुपये ? हिसाब माँगा था ?"

वटवावू ने कहा, "मगर प्रकाशक वोले—आप सारा रुपया तो पहले ही दस-पाँच, दस-पाँच कर ले चुके हैं। और रुपये आयेंगे कहाँ से ? आपके हिसाब में कुल पैंतीस रुपये निकलते हैं।"

गदाधर वावू ने पूछा—"आप सारे रुपये पहले ले बैठे हैं ?"

वटवावू ने अपराधी की तरह कहा—"किसी महीने एकदम ज़रूरत पड़ती तो कभी-कभी रुपये माँग लेता । दो-तीन घण्टे बैठता तो मुँह सिकोड़ दस-पाँच बढ़ा देते । और कहते—जाइए ! बिलकुल नहीं दिए, ऐसा तो मैं नहीं कह सकूँगा।"

और फिर वे खड़े हो गए। बोले, "मैं चलता हूँ। आप हम लेखकों-कलाकारों के लिए लड़ रहे हैं। भगवान आपको दीर्घायु करे, मेरे भत्ते (दुःस्थ साहित्यकारों के लिए सरकार द्वारा दिया जाने वाला मासिक भत्ता) के, लिए कुछ कोशिश करना । बस यही कहने आया था। मेरा और है भी क्या ? कौन है जो मेरे लिए सोचेगा ? आप मेरे लिए लिखेंगे तो सरकार ज़रूर कुछ करेगी।"

गदाधर वावू सोच रहे थे—मेरी बात सरकार रखेगी, यह कोई ज़रूरी नहीं। फिर भी आश्वासन देकर बोले, "ज़रूर लिखूंगा। आज ही लिखूंगा । देखें, क्या होता है ?"

वटकृष्ण वावू उन्हें असीस देकर छड़ी से ठुक-ठुक करते उतर आये नीचे। जाते-जाते इतना और कह गये—

"भगवान तुम्हारा भला करे !"

खगेश्वर वावू पर गदाधर वावू को क्रोध आ गया। "कितना धूर्त है ! उस दिन सत्यपाठ करने की तरह बोल गया—मैं हलफ़ लेकर कहता हूँ, हमारे शुद्ध साहित्य मंदिर के पास किसी लेखक का एक पैसा भी रॉयल्टी बाक़ी नहीं। सारा हिसाब एकदम साफ़ है । फिर कहता है—पिताजी ने मना किया है लेखकों को ठगने से ! इधर देखते हैं तो वटवावू जैसे वयोवृद्ध उच्चकोटि के साहित्यकार के साथ सरासर दग़ाबाज़ी ! क्या कुछ नहीं किया साहित्य के लिए ? जीवन-भर कुँवारे रहे, बाल-बच्चों का मुंह नहीं देखा, अकेले निस्संग रहकर साहित्य-साधना

करते रहे हैं। उनकी किताबें क्लासिक मानी जाती हैं। उनके साथ ऐसा व्यवहार ! यह तो एकदम डकैती है !"

गदाधर बाबू गुस्से में लाल हो गये। फोन मिलाया। खगेश्वर बाबू के घर से आठ-नौ वर्ष की बच्ची ने उठाया।

"कौन ?"

अपना नाम बताया गदाधर बाबू ने। 'देखती हूँ' कह कर रिसीवर अलग रखकर गई, आकर कहा, "बापू सोये हैं।"

सोये हैं ! दस बजे ! फिर ग्यारह बजे फोन किया, उसी ने उठाया। अब की नाम बताने की ज़रूरत न पड़ी, उसने कह दिया, "बापू सोये हैं !"

साढ़े पाँच बजे और रात आठ बजे फोन किया, वही उत्तर—"बापू सोये हैं।"

गदाधर बाबू गुस्से में भर गए। अगले दिन 'संभार' में एक ज़ोरदार स्टेटमेण्ट दे दिया।

उसका शीर्षक था :

"वयोवृद्ध विख्यात साहित्यकार की दुर्दशा !"

इसमें कहा गया था—एक प्रतिष्ठित प्रकाशक ने किस प्रकार एक वयोवृद्ध साहित्यकार श्री बटकृष्ण महान्ती को घण्टों बिठाकर निहोरा करने को मजबूर किया। फिर दस-पाँच देकर विदा कर देता। और अब साल के अन्त में कुल 35 रु० रॉयल्टी !—इस सबका वर्णन मर्मस्पर्शी भाषा में किया था। सरकारी उदासीनता की इस मामले में कटु आलोचना थी।

हालांकि किसी आदमी या फ़र्म का नाम वहाँ न था, मगर सब जानते हैं कि महान् साहित्यकार बटकृष्ण बाबू की किताबों के प्रकाशक कौन हैं। लोग आपस में फुसाफुसाहट करने लगे।

आठ-दस दिन बाद की बात है। अस्सी वर्ष के बूढ़े बटबाबू के घर की जीर्ण-शीर्ण कुटिया के सामने खगेश्वर बाबू की सफ़ेद एम्बेसडर खड़ी है। लिजलिजे बन कर अन्दर दाखिल हुए। पीछे-पीछे ड्राइवर टोकरी में कुछ चीज़ें लिए है।

बस्ती वालों में कानाफूसी हुई—

"अब बटबाबू के भाग खुल गये समझो ! कोई बड़ा आदमी चार-पाँच दिन से आ रहा है।"

दूसरे ने कहा, "बटबाबू मामूली आदमी नहीं हैं। महान् हैं वे। उनके मरने पर देखना, मन्त्री, ज़िलाधीश, आई. जी., एस. पी., 'संभार' के सम्पादक आयेंगे फूल चढ़ाने। उनकी फोटो, जीवन-वृत्त अखबारों में छपेगा। अजर-अमर हो जायेंगे !"

हफ़्ते-भर बाद 'संभार' में ही प्रतिवाद छप गया—

वयोवृद्ध साहित्यकार का प्रतिवाद। लेख में बटबाबू ने खुले दिल से घोषणा की थी—

"अमुक तारीख के 'संभार' में मुझे लेकर स्टेटमेण्ट। गदाधर नायक ने दुर्भाग्यपूर्ण वक्तव्य दिया है। उसमें तथ्यों की खेदजनक भूल रह गई। प्रकाशक खगेश्वर बाबू मेरे पुराने मित्र हैं। सहोदर की तरह हैं। सारा प्राप्य माँगते ही दे दिया करते हैं। कभी-कभी एडवांस भी दे देते हैं। वे जैसे उनके भले-बुरे में साथ देते हैं, सगा भाई भी नहीं देगा। ऐसा कोई वक्तव्य उनके बारे में देना···उन्हें मर्माहत करता है। इसका वे दृढ़ता के साथ प्रतिवाद करते हैं।"

पढ़कर गदाधर बाबू सन्न रह गए। सिर पर हाथ रखे रह गये। जुबान तालू से लग गई। सोच रहे थे—आखिर लोग कहेंगे कि मैं उन्हें ब्लैकमेल कर रहा था। झूठ-मूठ ही भले आदमी के नाम पर बकवास कर रहे है? सारी रात नींद नहीं आयी।

सुबह सात बजते-न-बजते फोन की घण्टी बज उठी। खगेश्वर बाबू पकड़े थे—

"जी, कल रात का 'संभार' देखा?"

गदाधर बापू चुप! बोली वन्द। वे पूछ रहे थे···

"जी? कौन! गदाधर बाबू! मैं खगेश्वर कह रहा हूँ। जी, गदाधर जी···?"

गुस्से में गदाधर जी अस्थिर हो उठे। उनकी सारी देह में पराजय की ग्लानि भर गई। ज़ोर से बोले—

"नहीं···नहीं···मैं नहीं, यहाँ···इस देश में आप और आपके-जैसे लोग ही हैं और वे ही रहेंगे।"

और झटके के साथ फोन का चोंगा रख दिया।

●

पद्मबीज

उस दिन हमारी पड़ोसिन ने टोकरी भर दाने भेज दिए पद्मबीजों के। टोकरी सह। वे खुद उसने नहीं मँगाये थे। उन्हें किसी और ने गाँव से लाकर दिये थे। पत्नी ने कमलगट्टे देखकर मुँह फेर लिया—

"हाँ, तरकारी अच्छी लगती है। मैं कुँवारी थी, उन दिनों कई बार खायी है। मगर कैसे हैं, यह मैं नहीं जानती।"

आखिर महाराज (रसोइया) को बड़ी जीजी के घर भेजना पड़ा। वह मुझसे दस बरस बड़ी है। सत्तर से भी ज्यादा की होगी। रसोई-वग़ैरह में खूब नाम है जीजी का। मगर वे कमलगट्टे का पकाना भूल गई थीं। उन्होंने भेजा एक और के घर—बड़ी जिठानी सावित्रीदेवी के यहाँ। वहाँ महाराज जो कुछ पूछकर आया उसी मुताबिक मसाला पीसा गया, तरकारी पकायी गई। वैसे तरकारी खूब लज्ज़तदार बनी। सहज ही भुलाया नहीं जा सकता।

रात में खा-पीकर पलंग पर लेट, पेट पर हाथ फेरते समय कई बातें याद आ गईं—गाँव में वह पद्मपोखर। तीनों किनारों पर कमल ही कमल के फूल। कुंई की लता भरी। सिर्फ़ पूरब की ओर से किनारा साफ़ रहता बीच तक। वहाँ लोग नहाना-धोना करते, तिल-दर्पण भी होता। दुपहर में गाय-बैल, भैंस-बकरी वग़ैरह को लाकर पानी में घुसा देते। कपड़े धोना अनवरत चलता घाट से कुछ हटकर।

पोखर में मछली से ज्यादा थी जोंक। एक बार खुदरकुणी के व्रत (मंगला देवी का व्रत) के समय बीनू जीजी ने कहा—पद्म लाकर दो! मुझे सँपेरे वाला वह गीत याद आया—

"पद्मावती रानी
कंसर घरनी
लक्ष भार पद्म
दबुरे कन्हाई, पाखुड़ा न थिब मिशा!"

(पद्मावती रानी/ (कंस की घरनी/) लक्षभार पद्म/ देगा रे कन्हाई/, पंखुड़ी देना न मिलाय!)

सारी बहादुरी खुद लेने के लिए बिना किसी को बताए धप्प पानी में चला

गया। दल में पैर फँस गए, और मेरे होश गुम ! कुछ पद्म तोड़कर गले में डाल रखे थे, अचानक सारी देह जलन में भर गई। मानो कोई चिनगारी लगा रहा है। समूची देह कोई जकड़े है। मैं घबराकर चीख़ उठा। हड़बड़ाकर ऊपर उठ आया। देखा तो हाथ-पाँव, पीठ-छाती सब जगह पन्द्रह-बीस जोंकें चिपट गई हैं। मेरा खून चूसने में लगी हैं। जितना खींचता हूं, छोड़ती ही नहीं। चमड़ी छिल जाती है। अचेत हो पोखर के किनारे गिर पड़ा। पास में गाय चराने वाले छोकरे दौड़े आये। चिल्लाने लगे। गाँव वाले आकर जमा हो गए। वे भी जोंक खींच रहे हैं। आखिर एक ने कहा, "जाकर अंजुरी भर नून ले जाओ।"

तब तक बापू, माँ सब खबर सुन दौड़े आ चुके थे। वे भी चीख-पुकार में शामिल हो गए। माँ तो बस—"क्या हुआ रे ! यह क्या रे !" कहती हाथ-पाँव पटक रही थी। नमक आया, जोंक के मुँह और पूँछ पर डाला गया। चमड़ी छोड़ मेरी देह पर कुलबुलाने लगीं। आधा खून मेरा पी गईं इतने में। एकदम सफ़ेद पड़ गया मैं तो। होश का तो सवाल ही न था। तब बैलगाड़ी में लादकर अस्पताल ले गए। सेलाइन और कई इंजेक्शन ठोंके गए। तब दस दिन बाद जाकर कुछ ठीक हुआ। घर लौटा।

एक बार मामा के यहाँ गया था मैं। साथ थे दोनों भाई। वहाँ भी खूब बड़ा एक पोखर है। कमल और कुंई से भरपूर। कोई पूजा थी उस दिन। दोनों ममेरी बहनों ने ज़िद कर ली—हमें कुंई लाकर दो। उनके दोनों भाई घर पर थे नहीं। मैं मना करता तो डरपोक होता। लेकिन पुराना अनुभव भी भूला न था।

छुटकी, याने परिमला ने अधिक ज़िद की। नौवीं में पढ़ती थी। एक-दो बार उसका कहा न किया तो गाल पर चिकोटी डाल दी थी। मैंने भी उसके आँचल का एक हिस्सा दाँत से काट लिया था। माँ ने आकर छुड़ाया। उसकी लम्बी वेणी पर मैंने एक बार कैंची लगा दी। वह नींद में लेटी थी, मगर मैं पकड़ा गया। मामी ने जाकर माँ से कह दिया। मामा ने आकर अच्छी तरह पिटाई कर दी।

हाँ, अब की बार मैं पानी में नहीं उतरा। पोखर के बायीं ओर एक बड़ा आम का पेड़ था। उसकी लम्बी डाल पोखर पर अन्दर तक झुकी थी। एक लग्गी लेकर डाल पर बैठा फूल खींचता रहा। आठ-दस फूल खींचने में ही काफ़ी देर हो गई। तभी देखा, दाहिने हाथ में कुछ काट रहा है। पानी में कुछ छपाक से गिरा ! मगर उधर ध्यान दिये बिना फूल खींचने में लगा रहा।

कुछ ही देर में थकावट लगने लगी। एक तरह से ऊंघ-सा गया। हड़बड़ाकर नीचे उतरने लगा। तभी मामाजी कहीं से आकर घाट पर पहुँचे। मुझे पेड़ पर देख चिल्लाये, "चल चल, घर चल ! तुझे पेड़ पर चढ़ने को किसने कहा ? शैतान ! ठहर, जीजी से शिकायत करता हूँ। जमकर पिटाई होनी चाहिए तेरी।"

मैंने सुन रखा था कि उस पोखर में दो जने डूबकर मर चुके हैं। कहते हैं,

उनके भूत इस आम पर रहते हैं। चिलचिलाती दुपहर में या सुनसान साँझ की बेला में कोई उधर नहीं जाता। आम की बात तो दूर रही।

पेड़ से उतरकर देखा—मेरी बायीं बाँह से जगह-जगह खून टपक रहा है। हाथ से खून पोंछ सीधा घर की ओर दौड़ा। परिमला के हाथ में कुंई बढ़ा दिये। हाथ-पाँव धोकर चारपाई पर बैठ गया। मामी खाना परोस कर बुलाने आयी, तब तक मैं लेट गया था। हिला-हिलाकर जगाया। मगर मैं सिर्फ़ गूं-गाँ कर रहा था। मामी ने उलटा कर मुझे खींचा। अचानक हाथ से खून बहता देख चौंक उठी। ऊँची आवाज़ देकर माँ को और दोनों भाइयों को बुलाया। दोलपूनों के दिन थे। हम सब नहीं थे। बापू व बीनू जीजी कटक में थे। माँ झपटकर आयी। मुझे देख ऊँची आवाज में—'अब क्या होगा? इसे क्या हो गया?' चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगी। मंझले मामा दौड़े—दौड़े जाकर माली साही से केला शेठी को बुला लाये। इस इलाक़े के नामी-गिरामी ओझा हैं वे। आकर मन्त्र फूंका। बार-बार मुझ पर पानी के छींटे दिये। फिर बोले, "किसी एक जन्तु ने काट खाया है पेड़ पर। वो जी न सकेगा। यह कोई गिरगिट होगा या कुछ···।"

उस घाव पर पीतल की थालिया (छोटी थाली) लगाई गई। इतनी वज़नी थाली नीचे नहीं गिरी। कैसे चिपक गई वहाँ? खूब झाड़-फूंक की गई तब कहीं जाकर मुझे होश आया। ओझा ने बताया—"इसे सोने न देना। कल दिन में इसी समय ज़हर उतर जाएगा। इस बीच सो जायेगा तो कोई बचा न सकेगा। सावधान रहना!"

दोनों भाई, परिमला तीमारदारी में सजग रहे, ताकि मैं सो न जाऊँ। माँ ने बताया—दिन-रात में परिमला की एक बार भी पलक नहीं झपकी। मूरत बनी बिस्तर के पास काठ-सी स्थिर बैठी रही। अगले दिन बापू और बीनू आ पहुँचे।

चारपाई पर लेटा था। कई बातें सिनेमा की रील की तरह आ रही थीं। कितने दिन से गाँव नहीं गया था। मामा के घर की बात तो बहुत दूर की है। बापू चले गए हैं। गाँव में माँ है, बीनू जीजी भी विधवा होकर गाँव में ही माँ के पास है। कुछ दिन ससुराल में रहकर खेत-बाग का काम देखती है। परिमला के तीन बच्चे हो गए—और फिर हम सबको छोड़ जा चुकी है, बड़े मामा आठ वर्ष से इस दुनिया में नहीं···

सुबह उठकर देखा तो मेरी स्त्री कमलगट्टों के छिलके उतार एक थाली में रख रही है। मुझे देखकर बोली—

"कल तो सड़ जायेंगे! आज ही सबकी तरकारी बना लें। क्या कहते हो?"

•

बन्दर

हाल ही में पेंशन पाये डिप्टी-कलकटर पदुमचरण बाबू आज गाँव की ओर जा रहे हैं। लम्बे पैंतीस वर्ष के अर्से में गाँव से सम्पर्क न के बराबर था। हालांकि बीच-बीच में वे गाँव आते नहीं, सो बात नहीं थी। मगर वह आना न आने की तरह था। मेहमान की तरह जाकर एक-दो दिन रहते, भाई-बिरादर, भतीजे-भतीजी के शादी-ब्याह में शामिल होते, लौट आते। कभी-कभी स्त्री, परिवार को लेकर जाते। बस्ती में किसी से न मिलने की या किसी के साथ मन खोल बात करने की फ़ुरसत न होती। ऊपर ही जाते और वैसे ऊपर के ऊपर चले आते।

पाँच-छ: वर्ष पहले राजधानी में सबडिप्टी थे तब एक-दो बार गाँव गये थे। बस कुछ घण्टे रहकर लौट आये अपने काम पर। काम के झंझट के साथ थी गाँव में रहने की दिक़्क़त। गाँव में अब तक अपने रहने लायक़ घर नहीं बना पाये, मकान की ज़मीन कुछ डिसमल आयी थी सो वैसे ही मुँह-बाये पड़ी है। चँकवड़, कँटनासी वग़ैरह से भर गई है जगह। आजकल घर बनाना कोई आसान बात है? खासकर उनके-जैसे अकेले आदमी के लिए! किधर-किधर होंगे? इसी कारण वे एक तरह से आशा छोड़ चुके थे। गाँव कभी जाना पड़ता, तो भाइयों के घर पर एक-दो दिन रहकर जल्दी ही अपनी नौकरी की जगह लौट आते।

कुछ दिन पहले, जब वे ग्राम-विकास विभाग में थे, गाँवों की ओर लौटने के लिए पड़े-लिखे बेकार युवकों को भाषण दिया करते, उपदेश देते। 'गाँवों की ओर', 'गाँव की धरती रही पुकार' इस तरह के कई पोस्टर भी छपवाकर चारों ओर दीवारों पर लगवाये थे। विभागीय मन्त्री जी के साथ जीप में जाते समय ग्रामीण संस्कृति की महानता पर तथ्यपूर्ण चर्चा में भी भाग लिया है। मगर, दरअसल गाँव के साथ उनका सम्बन्ध बस किताबी सम्बन्ध ही रहा।

पास के शहर में बस से उतरकर वे कोई चार मील रिक्शे में आयें, तब जाकर गाँव पहुँचेंगे। फिर बरसात के दिनों में तो मील डेढ़-मील पैदल चलना पड़ेगा। साँझ उतर आयी है। बस ने क़रीब आध घण्टा लेट कर दिया। शुलेई गाँव के पास एक पैसेंजर का कण्डक्टर के साथ झगड़ा हो गया—असबाब के किराये को लेकर। कुछ यात्री उतर रहे यात्री का समर्थन करने लगे। समस्या और भी जटिल हो गई। क़स्बेनुमा शहर में उतर कर रिक्शा ले लिया पदुमचरण बाबू ने। ख़ैरियत

है—अब गाँव पहुँच जायेंगे । उन्हें कुछ भरोसा हो गया । रिक्शेवाले से कहा, "जरा जल्दी चलो !"

शहर का चौराहा पार करते-न-करते देखा—उनके भाई के घर का हलवाहा नटिया हाट से कुछ सामान लिये आ रहा है। उन्हें देखकर झुककर प्रणाम किया। बोला, "पदम सामंतजी हैं ? जुहार है हुजूर !" पदुम बाबू ने पूछा, "हमारे घर सब ठीक तो है ?" 'हमारे घर' शब्द कहते समय अपनी ही बात उनके कानों को कुछ अटपटी लगी, अजीब-सी लगी। नटिया ने कहा—"जी हाँ, हुजूर ! आप चलिए, सामंत जी ने एक चीज़ लाने की ताक़ीद की है। लेकर मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ।"

पदुम बाबू गाँव की ओर चल पड़े। कुछ दूर आगे चलने पर देखा—ऊपरी बस्ती वाला रामा राउत बैलगाड़ी लिये जा रहा है। अचानक पहचान नहीं पाये। जवानी के दिनों में देखा था जिसे, वह रामा अहीर आज बूढ़ा हो गया है। दाँत सारे झड़ गए हैं। पदुम बाबू ने रिक्शे से झुककर पूछा, "क्यों रामा भैया ?" मगर तब तक रामा बैलों की पूंछ मरोड़ उन्हें गाली देने में लगा था। पदुम बाबू की आवाज सुन नहीं पाया। और सुनता भी तो पहचान नहीं पाता। पदुम बाबू को याद आया—यही वो रामा अहीर है जो रामलीला में मंथरा का और सूर्पणखा का पार्ट किया करता था। मुखौटा लगाकर वह जब सूर्पणखा बना नाचता-नाचता आता तो दर्शकों में हँसी की लहर छूट जाती।

पदुम बाबू फिर अन्यमनस्क हो गए। बापू जब तक जीवित रहे, कॉलेज की छुट्टियों में घर आते। ख़बर पाकर वे बैलगाड़ी भिजवा देते थे। पदुम बाबू बैलगाड़ी में सीधे बस से उतर बैठ जाते, घर पहुँच जाते। पर इधर तीस-पैंतीस बरस से गाँव एक तरह से छोड़ ही दिया है। सब कुछ बदल गया है। रास्ते कितने सुधर गए हैं। बस, बीस मील में मील-आध मील कच्चा रास्ता रह गया। उस नाले पर पुलिया बन ही नहीं पाती ! एक बार मंतरी जी को बुला लाते तो काम हासिल हो जाता। मगर इतना भी गाँव के लोग नहीं कर पाते ! अपने बीच कलह करते-करते तो दिन बीतता, गाँव की बात सोचे कौन ?

पदुम बाबू ने एक बार सोचा भी—रिटायरमेंट के बाद गाँव में छोटा-मोटा घर बना सपरिवार आकर रहेंगे। लोन लेकर राजधानी में जो घर बनाया है, उसे किराये पर लगा देंगे। मगर अगले क्षण वह विचार हवा में उड़ गया। गाँव में सिर्फ़ रह जाने से तो नहीं होगा। यहाँ बच्चों को लेकर गुज़ारा कैसे करेंगे ? पूर्वजों की जो दो-चार एकर है उससे जो धान आता है वह तो दो महीने भी नहीं चलता, उसका भी कोई भरोसा नहीं। कब बँटाईदार दबा बैठेगा, कोई ठिकाना नहीं। सुना है, गाँव के चार-पाँच छोकरे कम्युनिस्ट भी बन गए हैं। कौन जाने, कब क्या हो ? फिर कई बार तो गाँव वाले धान-चावल गाँव के बाहर जाने भी

नहीं देते । बस रोक लेते हैं । उनके बच्चों की पढ़ाई भी पूरी नहीं हुई । सिर्फ़ बड़े बेटे ने इस बार बी. एस-सी. कर राउरकेला में इंजीनियरिंग में दाखिला लिया है । बाक़ी चार बेटों और दो बेटियों ने अब तक स्कूल-कालेज की पढ़ाई पूरी नहीं की । अतः राजधानी में रहने के अलावा कोई चारा नहीं ।

अतः पदुम बाबू ने खूब सोच-विचार कर तय किया है—गाँववाली चार एकर बेच कर उन पैसों से भुवनेश्वर वाले मकान में बाक़ी बची जगह पर रास्ते की तरफ़ दो-तीन दुकानें खड़ी कर दें । किराये के कम-से-कम डेढ़-दो सौ मिल जायेंगे । साथ में पेंशन है । दुनिया चला लेंगे । बाक़ी का सरकारी ऋण भी धीरे-धीरे चुका देंगे ।

अतः मँझले भाई वैरोचन को पहले खत लिखकर ताक़ीद कर दी थी—गाँव जा रहा हूँ, ज़मीन का कोई हिसाब बिठाना है । और गाँव नज़दीक आ गया है। सिरे पर बड़ा पोखर दिख रहा है । यहीं पर बच्चे कुंई तोड़ा करते हैं । दूसरी बस्ती के लड़के जागने के पहले वे और छोटा भाई त्रिलोचन (आजकल वह बाली-मेला बांध पर कंट्राक्टरी करता है, दस बरस हुए, भेंट ही नहीं हुई) चले आते कंधे पर कुंई का बोझ लादे, भालकुणी पूजा के दिन मरुवा जीजी को देते । दूसरी बस्ती के छोकरे आकर देखते—पोखर खाली है ! इसके लिए कितना ताकना नहीं पड़ता ।

माँ और बापू तो उन्हीं दिनों चले गए जब वे कालेज में थे, फिर कर ली चाकरी । गाँव के साथ सम्पर्क स्थापित करनेवाली रस्सी थी यही ज़मीन—खेत । आज उसे भी बेचने निकले हैं। बाद में रहेगा क्या ? मैं यहां परदेसी या मेहमान हो जाऊंगा । उधर केतकीझर वाला जोहड़ साँप की केंचुल की तरह चमक रहा है, उधर के लम्बे ताड़ पर उगेगा कुछ देर में । इसी जोहड़ के पास उनकी ज़मीन भी दिख रही है ।

गाँव में आ गए । बीच रास्ते पर है सपनी का घर । सपनी माँ थी बापू की रखैल । बापू ने उसे एक छोटा-सा घर बनवाकर रख दिया था । इसी बात पर बापू-माँ के बीच कई बार झगड़ा-रूठना हुआ था—उन्हें याद है । कई बरस हुए सपनी भी जा चुकी है उस पार । वह घर भी ढह गया है। सपनी माँ रास्ते पर जाते समय बुला लेती उन्हें—अमरूद, नारियल, गँडेरी वग़ैरह देती और नेह से माथा सहला देती । यह बात कभी घर आकर नहीं बताते । उन्हें लगता—माँ को पता चल गया तो नाराज़ होगी ।

पदुम बाबू भैया के वहां पहुँच चुके थे। वैरोचन बाबू इस गाँव के प्राइमरी स्कूल के मास्टर हैं । बाहर एक कुर्सी लाकर डाल दी । पदुम बाबू बैठ गए। वैरोचन ने कहा—अमीन मुरारी मिस्सर को खबर दी है । कल दस बजे वे ज़मीन पर आयेंगे ।

खरीददार फक़ीर साहू भी होंगे। माप-चूप हो जायगी। फिर दो बजे दोनों जाकर रजिस्ट्री कर देंगे। देन-लेन की बात पहले ही तय हो चुकी है। कबला लिखने के लिए मुहर्रिर जटी कानगोई को ज़मीन के नम्बर वग़ैरह दे आये हैं। तुरन्त स्टाम्प काग़ज़ भी मिल जायगा। अतः और चिन्ता की कोई बात नहीं। हाथ-पाँव धोकर विश्राम करें।

इसके बाद फिसफिसाहट में बोले, "सावधान रहना ! देखो, नकुली साहू ने पहले तो ज़िद पकड़ी थी कि बाया (बेचने वाला) आधा रजिस्ट्री का खरच दे। मगर मैंने खूब समझा-बुझाकर चवन्नी पर राज़ी किया है। बँटाईदार दो आना माँगता है।

पदुम बाबू ने कहा, "ठीक है। ऐसा ही कर देंगे।"

अगले दिन सुबह दस बजे पदुमचरण बाबू थोड़ा-बहुत जलपान कर नक्शा एवं दलील वग़ैरह लेकर ज़मीन पर चले आये। साथ था बँटाईदार केलुआ। बैरोचन बाबू इन्हें ज़मीन पर भेज स्कूल चले गए। मगर अमीन मुरारी भैया का कोई अता-पता नहीं। देखते-देखते ग्यारह भी बज गए। पदुम बाबू ने कलुआ को भेजा अमीन को जल्दी से बुला लाने के लिए। आध घण्टे बाद आकर केलुआ ने बताया, "जी, मिस्सरजी तो घर पर नहीं हैं। पड़ोस वाले गाँव तराबोई गये हैं दही-चिउड़ा खाकर। आज वहाँ नरीनंदजी का सिराध है। बेटों ने ब्राह्मण-भोजन कराया है। पुराने जजमान ठहरे, न जायें कैसे ? घर पर कह गए हैं—दोपहर ढले सीधे खेत पर पहुँच जायेंगे।"

पदुम बाबू गुस्से में लाल हो गए। आखिर क्या करें ? खेत के छोर पर आम के नीचे छाया में बैठ गए। जाड़ों की धूप। फागुन में ही ज़मीन बेचना चाहिए, वरना फिर बँटाईदार धान की बुवाई कर देंगे। फिर साल भर इन्तज़ार करो। धान की कटाई तक। खरीददार फक़ीर साहू आ पहुँचे हैं। वे भी उसी पेड़-तले पदुम बाबू के पास बैठकर अमीन की प्रतीक्षा करने लगे। दोनों में गपशप होने लगी। पदुम बाबू को ज़रा झपकी आ गई। तौलिया बिछा बायीं करवट लेकर बाँह पर सिर रखकर लेट गए। फक़ीर साहू और केलुआ को भी नींद आ गई।

अचानक पदुम बाबू को लगा, पेड़ पर कोई बड़ा बन्दर इस डाल से उस डाल पर कूद रहा है और पूरे पेड़ को हिला रहा है। उन्हें लगा, डाल टूटकर उन्हीं पर गिरेगी। आँखें मलते हुए हड़बड़ा कर उठे। केलुआ को आवाज़ दी। वह भी हड़बड़ा कर उठ बैठा। उसने कहा, "कोई बन्दर बेचैन हो उछल-कूद रहा है। लगता है, डाल टूटकर मुझ पर ही गिरेगी।"

केलुआ ने खड़े होकर चारों ओर निगाह फिरा कर कहा, "कहाँ ? कोई बन्दर तो नहीं ! पेड़ की डाल पर बग-बगुली बैठे हैं। यदि बन्दर कूदता तो वे वहाँ कैसे टिके होते ?"

फकीर साहू भी तब तक उठ बैठे थे। उन्होंने भी केलुआ की बात का समर्थन किया—

"क्यों ? कोई सपना देखा है पदुमबाबू ?"

पदुम बाबू ने कहा, "नहीं-नहीं, बन्दर ही था। अपनी आँखों देखा है। कहीं भाग गया होगा।"

अमीन मुरारी मिस्सर कोई एक-डेढ़ बजे पहुँचे। चेन डाल जमीन मापी गई। फक़ीर साहू ने कहा, "चारों ओर चार खूंटे गाड़ो। बस फिर कोई गड़बड़ न होगी। वरना पास की जमीन वाला बट बेहरा जैसा आदमी है—देख लेते समय मीन-मेख करेगा।"

केलुआ से माटी खोद कर चार बड़े-बड़े खूंटे गाड़ देने को कहा। केलुआ ने तीन तो आराम से गाड़ दिये। फिर चौथा गड्ढा खोदने लगा। पदुमबाबू ने घड़ी देखी। बोले, "ज़रा जल्दी-जल्दी हाथ चला, केलू। दो बज गए। तीन बजे सब-रजिस्ट्रार के दफ़्तर पहुँचना होगा। वैरोचन भी वहाँ पहुँचेगा। आज ही किसी तरह रजिस्ट्री कर दें। मैं साँझवाली बस से भुवनेश्वर लौट जाना चाहता हूँ। उधर घर पर बच्चे हैरान होते होंगे। रजिस्ट्री के बाद मैं उसका सारा हिसाब चुका दूंगा। बाबू रे, जल्दी-जल्दी हाथ चला !"

केलुआ ने डेढ़ हाथ गड्ढा खोदा। माटी निकाल रहा था कि कुछ खटका। पाँव हटाकर उसने जोर लगाया और खींचा। हाथ कसकर खींचा—देखा तो कोई बन्दर बड़ा-सा ! कंकाल है ! केलुआ ने खींच कर माटी पर पटक दिया।

पदुम बाबू रे···रे···कहते पीछे हट गए। जाकर पेड़-तले बैठ गए।···माथे पर हाथ दिये बैठे रहे। कुछ देर तक बोल नहीं सके। केलुआ ने मज़बूती से खूंटा गाड़ दिया। पोखर में हाथ-पाँव धो आया।—"चलें सामंतजी !"

मगर पदुम बाबू चुप ! निस्पन्द ! कुछ देर के बाद बोले, "हमारे पुरोहित जी सनातन मिस्सर कहाँ गए ? उन्हें बुला लाओ तो !"

फक़ीर साहू ने कहा, "सनातन मिस्सर से क्या काम है ? वे तो बरस हुए जा चुके हैं !"

"ऐं ! मर गए ? क्या हुआ था ?"

"होगा और क्या ? बुढ़ापा ! बीमार हो गए थे। शरीर तो वैसे ही रोग का घर होता है।"

"बूढ़े हो गए थे ?" पदुम चौंक गए। वे तो मेरे ही साथ खेलते-कूदते थे, बूढ़े कैसे हुए ?" फिर उन्होंने अपनी ओर देखा, "हाँ, मैं भी अट्ठावन पार कर गया। सनातन मिस्सर तो मुझसे भी दो-चार बरस बड़े थे।···तो फिर साठ पार कर ही गए थे वे।"

पदुम बाबू को याद आया—पैंतालीस बरस पहले एक दिन वे और सनातन

दोनों, बन्दरों को भगा रहे थे। तब उनके बापू पुरोहित थे। साथ में कालिया—उनका कुत्ता।

दो बन्दर पोखर के पास अमराई में पेड़ों पर आपस में खेल रहे थे। सनातन ने एक पत्थर उठाकर दे मारा। एक के गाल पर जा लगा निशाना। उन्होंने खुद भी एक ढेला फेंका, वह दूसरे की पीठ पर जा लगा।

दोनों विकल हो नीचे उतरे और भागने लगे जान बचा कर। कालिया ने दौड़कर एक का टेंटुआ दबोच लिया। सनातन के साथ जाकर खींचते ले गए उसे पोखर के किनारे। मुँह पर पानी छींटा। पर वह बच नहीं सका। इसके बाद दोनों ने अपराधी की तरह उसे ले जाकर भरी दुपहर में खेत में एक और गड्ढा खोद गाड़ दिया। किसी को कुछ नहीं कहा। चुपचाप अपने-अपने घर लौट गए।

कुछ दूर जाकर मुड़कर देखा—डाल पर दूसरा बन्दर गाड़ी हुई जगह की ओर देख रहा है। बीच-बीच में इस पेड़ से उस पेड़ पर कूद रहा है। सनातन का हाथ पकड़ वे चोर की तरह चुपचाप घर आ गए।

पदुम बाबू का चेहरा स्याह हो गया। उन्हें लगा, बहुत दिन पुरानी स्मृति जैसे कंकाल की तरह माटी-तले से निकल आयी है, और चारों ओर पाँव फैला कर सामने खड़ी हो उनकी ओर देख रही है, हल्के-हल्के मुस्करा कर कुछ कहना चाहती है। वे कुछ बोल नहीं पाते।

फ़क़ीर साहू ने कहा, "चला जाय! देर हो गई।"

पदुम बाबू ने कनखियों से देखा। घड़ी में देखकर बोले, "रहने दें। दो से ज्यादा बज गए। मैं आज लौट जाता हूँ। फिर कभी आने पर देखा जायगा।"

अमीन और केलुआ के हाथ में उनके प्राप्य बाबत पाँच-पाँच का नोट बढ़ा दिया। और फिर सीधे घर की ओर चल पड़े।



एक पैसा

नीलाम्बर बाबू शाम की आलोचना-सभा बनाम टी-पार्टी में भाग लेकर लौट रहे थे। भुवनेश्वर से कटक कोई खास दूर नहीं। कुल जमा बीस मील याने आधा घण्टे का रास्ता है। फिर भी मन उनका खीझ में भर गया है। झुंझलाहट में रास्ता खत्म ही नहीं होता। वे सोच रहे हैं—आज की इस बरसाती साँझ को यों बेवक़ूफ़ की तरह बेकार की आलोचना में खर्च नहीं करना था। वरन् कटक में अपने घर के बरामदे में बैठ इधर-उधर की सोचते-सोचते ही बिता देनी चाहिए थी। सारे के सारे बेकार तर्क ! पश्चिम बंगाल के सभी मुख्य मन्त्री कुंवारे ही क्यों हुए ? हमारे यहाँ मंत्रिमण्डल की अब नीति क्या है ? नयी सरकार के ज़माने में ग्राम-सेविकाओं का भविष्य क्या होगा ? इन्हीं सारी फफूंद-जमी बातों में तुक मिलाकर भाग लेना ज़रा भी नहीं रुचा। और तीन घण्टे बैठे रहना पड़ा !

रास्ता सारा धुलकर चमचमा रहा है। फिर भी जगह-जगह तुस उड़ रहे हैं। भींगे पेड़-पौधों और खेतों पर मोटर की रोशनी पड़ती है तो अबरक की बुकनी बिखरने जैसा लगता है। कोई उधर रास्ते के इस पार से उस पार फड़फड़ा कर उड़ गया। एक सियार भी रास्ता काट गया, दाहिने से बाईं ओर। उनकी अन्यमनस्कता ने यह सब नहीं देखा, ऐसी बात नहीं। पर उस ओर वे ध्यान दे ही नहीं पाते। गाड़ी दौड़ाते जा रहे हैं।

सबसे अधिक परेशानी इस लेबुल क्रासिंग पर होती है। शहर में पहुँच कर भी न पहुँचने-जैसा लगता है। उन्होंने माथे से पसीना पोंछ लिया।

लेबुल क्रासिंग पार कर बक्सीबाज़ार पहुँचे, तब तक रात के साढ़े दस बज रहे थे। दुकान-बाजार बन्द हो चुके थे क़रीब-क़रीब। एक-आध खुली थी, सो भी बन्द हो रही थी।

बिजली के खम्भे-तले क़रीब-क़रीब अँधेरे में थे। उन्हें लगा जैसे कोई अखबार खरीदना चाहिए। आज शायद नौकर ने ताज़ा अखबार ख़रीदा ही न हो। एक हॉकर छोकरे को आवाज़ दी। अखबार ले कर पहले पन्ने पर सरसरी तौर पर नज़र डाली। तब जेब टटोली। चवन्नी निकली। हॉकर की ओर उसे बढ़ा दिया। बारह पैसे रखकर तेरह नये पैसे लौटाने की बात। मगर अखबार वाले ने लौटाये कुल बारह ही पैसे—दस पैसे और दुपैसी का सिक्का ! उन्होंने अन्यमनस्क भाव

से पैसे आदतन जेब में डालने चाहे, तभी अचानक याद आया—गिन लेना चाहिए। हॉकर तब तक साइकल छुटाये दस-बारह हाथ जा चुका था। फिर भी नीलाम्बर बाबू ने आवाज़ लगायी, "एक पैसा कम है!" हॉकर ने उत्तर दिया, "एक पैसा नहीं है। न तीन पैसे का सिक्का है। लाचार हूँ, बाबू!"

नीलाम्बर बाबू को याद आया—उनका नौकर रोज़ ही ऐसी रिपार्ट देता रहता है! हॉकर लोग भी रोज़ उनसे इसी तरह एक-एक पैसा अधिक लूट लेते हैं! वह क्षति पूरी करनी पड़ती है नीलाम्बर बाबू को। वे नौकर पर भी आधा विश्वास करते और आधा अविश्वास करते। आज तो इस बात का खुद अनुभव कर प्रमाण ही पा लिया।

उनको विश्वास हो गया कि यह एक तरह की सुचिन्तित और सुपरिकल्पित योजना का अंग है। हर अखबार में एक-एक पैसा वसूल करने की चाल है। ऊँची आवाज़ में माँग की, "अलबत एक पैसा और देना होगा।" हॉकर ने सारी रेजगारी हथेली पर रखकर कहा—"न एक पैसा है और न तीन पैसा!"

मगर नीलाम्बर बाबू नहीं समझे। उनका अपना ही तर्क था, "अगर नहीं है तो पहले से क्यों नहीं रखा? जानबूझ कर रेजगारी नहीं रखी तुमने।" उन्होंने भी अपनी जेब से सारी रेजगारी निकाल ली। सिक्का ढूंढ़ने लगे। देखा, ठीक बारह पैसे की रेजगारी बनती ही नहीं। दस या पन्द्रह पैसे निकल रहे हैं! गुस्से में हॉकर के बच्चे को बुड़बक, ठग और पता नहीं क्या-कुछ कह डाला। आखिर तय कर लिया—अखबार वापस कर दूंगा। क्यों कि मेरे खयाल से ऐसी संगठित ठगी को सिर झुका कर मान लेना किसी भी देशप्रेमी के लिए ठीक नहीं। इन्हीं बातों से तो देश में घूस और बेईमानी को बढ़ावा मिलता है। उन्होंने तुरंत हॉकर के हाथ से चवन्नी वापस लेकर गाड़ी तेज़ कर दी।

कुछ दूर जाने पर एक और हॉकर छोकरा मिला। यह उतना छोटा न था, क़रीब-क़रीब जवान हो चुका था, फिर कटकी जवान! पेंट, हवाई शर्ट पहने है। नीलाम्बर बाबू ने गाड़ी रोकी। आवाज़ दे कर अखबार माँगा। अखबार एक हाथ में लेकर जेब से रेजगारी निकाली। एक-एक कर पैसे ढूंढ़ने लगे। देखा तो पन्द्रह पैसों से नीचे या दस से ऊपर छुट्टे ही नहीं मिलते। उन्होंने हॉकर के हाथ में एक दस और एक पाँच का सिक्का बढ़ा दिया। मगर उसने तीन पैसों की जगह दुपैसी वापस की। लापरवाही में बोला, "मेरे पास रेजा नहीं!" नीलाम्बर बाबू का तो खून गरम हो गया। तो सब इस ठग-दल में शामिल हो गए हैं! सब मिलकर ठगी करने के लिए दल बना चुके हैं एक!

तब तक रात के साढ़े ग्यारह बज चुके थे। घर दिख रहा है। अत: यही है आज का आखिरी हॉकर। अब और हॉकर जुटने से रहे। उन्होंने आखिर सोच ही लिया—एक पैसा जाता है तो जाये। और ज़्यादा ऊँच-नीच सोचे बिना, अखबार

ले ही लिया जाय। मगर उनका देश-प्रेम आड़े खड़ा था। सब अगर चुप होकर यों ठगी सह लेंगे तो देश से दुर्नीति-अन्याय दूर होंगे कैसे ?

यों दुर्नीति को मुंह लगाते-लगाते तो आज यह मेघनाद-प्राचीर (जगन्नाथ मन्दिर को घेरे खूब ऊँचा परकोटा) की तरह आकाश तक सिर उठा चुकी है। उन्हें याद आ गया वही नीतिवाक्य—जो अन्याय करता है और जो अन्याय सहता है, दोनों भगवान की अदालत में समान रूप से दोषी हैं। उन्होंने सोचा, इसका प्रतिवाद करना जरूरी है। कम-से-कम सारे देश में कोई एक आदमी तो इसके विरोध में स्वर उठाये। और वह आदमी है—स्वयं नीलाम्बर दास।

हो चाहे एक पैसा ! छोड़ूंगा नहीं। उन्हें याद आयी नौकर की रिपोर्ट। रोज इसी तरह अखबार लेते समय एक पैसा ठग लेता है। हर महीने तीस पैसे भरने पड़ते हैं नीलाम्बर बाबू को अपनी जेब से ! एक कालाबाज़ार ही देश में जड़ें फैला चुका है। ना, ना, इसका मुक़ाबला किया जाना चाहिए। चाणक्य जैसे थियेटर में कुछ दूब उखाड़ने लग जाता है, नीलाम्बर बाबू उसी तरह दुर्नीति को जड़-मूल से उखाड़ फेंकने को कमर कस बैठे हैं !

चाहे एक पैसा ही हो, इसके पीछे एक बहुत बड़ा प्रिंसिपल है। इसके विरुद्ध जान की बाज़ी लगा देनी होगी ! याद आयी पन्द्रह वर्ष पुरानी घटना—ट्राम-स्ट्राइक हुई थी। ट्राम कम्पनी ने सिर्फ़ एक पैसा किराया बढ़ाया था—उस ज़माने में महीने भर तक हड़ताल चली। कितने जुलूस निकले ! कितनी जगह गोली चली ! झुण्ड के झुण्ड लोग मरे। शहीद हुए। याद है, उन्होंने उन दिनों कैसे ओजस्वी भाषण दिये थे, कितनी कविताएँ लिखी थीं।

और आज ! चुपचाप अन्याय कैसे सह लें ? युवावस्था में देशप्रेमी थे। किसी राजनैतिक दल के सक्रिय सदस्य भी थे। अनेक सभा-समितियों में भाषण दिये हैं। हड़ताल चलायी हैं। अब वे सब धन्धे छोड़कर व्यापार में आ गए हैं। मगर अन्दर का देश-प्रेमी कोई मरा नहीं। उन्हें लगा, जैसे वासुकी की तरह वे सारे समाज का बोझ उठाये हैं। उनकी तरह के समाज-सचेतन लोग ही ऐसी दुर्नीति को आसरा देंगे, यह तो घोर अन्याय होगा ! सिर्फ़ अन्याय ही नहीं, अपराध है एक तरह से !

ऊँचे स्वर में बोल उठे, "एक पैसा अलबत देना होगा !"

अखबार वाले ने उतने ही ऊँचे स्वर में जवाब दिया, "बाबूजी, पैसा नहीं है छुट्टा। अखबार लौटा दें।"

नीलाम्बर बाबू उसे दोष देने लगे। बोले, "जानबूझ कर छुट्टे पैसे न रख-कर चालबाज़ी दिखा रहे हो !"

हॉकर ने पेंट की जेब से सारी रेजगारी निकाल अँजुरी में भरकर दिखा दी, "तीन पैसे का सिक्का नहीं मिलता, यह बात हर आदमी जानता है बाबू !"

नीलाम्बर बाबू ने अपनी रेजगारी निकालकर देखा, दुपैसी पता नहीं कहाँ छुप गई है ! उन्होंने अभियोग किया, "रेजगारी नहीं है, पहले से रखना चाहिए थी !"

हॉकर ने अबकी जवाब दिया, "बाबू, मैं कोई बैंक नहीं हूँ।"

तर्क-वितर्क बढ़कर गाली-गलौज के स्तर तक आ पहुँचा। नीलाम्बर बाबू उसे बदमाश, ठग, पाजी वग़ैरह सम्बोधन करने लगे। हॉकर भी बदले में, "मुझे जो चोर कहता है, वह भी वैसा ही होगा !" बात कहने में पीछे न रहा।

अन्त में नीलाम्बर बाबू के हाथ से काग़ज़ खींच लिया। पैसे लौटा दिये। साइकल पर पैडल मारा और चंपत ! कुछ दूर जाकर रुका, "बड़े आये अखबार खरीदने वाले ! कभी अखबार पढ़ा है ?..."

नीलाम्बर बाबू को अपमान लगा। उसका अन्तिम वाक्य उन्हें बिलकुल बरदाश्त नहीं हुआ। हॉकर के पीछे गाड़ी स्टार्ट कर दी।

देखा, कुछ दूरी पर वह साइकल में बत्ती लगा रहा है। नीलाम्बर बाबू झपट कर गाड़ी से उतर पड़े। जाकर उसके सामने खड़े हो गए। उनकी दोनों आँखें जल रही थीं। गुस्से में हाँफ रहे थे। हॉकर बिचारा कुछ न समझ घबरा गया। उसने कभी न सोचा था कि बाबू गाड़ी दौड़ा कर उसका पीछा करेंगे। उसकी अक्कल चरख हो गई। रास्ते पर भी कोई चहल-पहल नहीं। सब सुनसान है। उसने लड़खड़ा कर पूछा, "आप क्या चाहते हैं ?"

"अखबार।" नीलाम्बर बाबू ने कहा।

"ले जाइए।"

"पैसे ?"

"नहीं, नहीं चाहिए !"

नीलाम्बर बाबू का गुस्सा एकदम ठण्डा पड़ गया। ऐसे आकस्मिक परिवर्तन के लिए बिलकुल तैयार न थे। वे तो पूरी तौर पर झगड़े के लिए पसीना-पसीना हो कर दौड़े थे। उनके हाथ में था उठा हुआ हथियार। ऐसे एंटीक्लाइमेक्स की तो कल्पना भी न थी !

उनका उत्साह, उत्तेजना, रक्तचाप सब-कुछ ठप्प-से ठण्डा पड़ गया। इतनी देर तक अँधेरे में जो फर्द बढ़ती जा रही थी, अचानक उसके आगे किसी ने एक बूँद उजाले की लाकर जला दी—धम् से ! और उसकी छोटी-सी किरण से जमा हुआ अँधेरा धीरे-धीरे पिघल कर साफ़ हो गया।

अखबार ले लिया। जेब से रेजगारी निकाली। एक दस पैसी और एक पाँच पैसी निकाली। हॉकर ने भी जेब से सारी रेजगारी निकाली। पहले की तरह दुपैसी खोजने लगा।

नीलाम्बर बाबू और हॉकर, दोनों ने एक साथ एक-दूसरे की ओर हाथ

बढ़ाया। पैसों का देन-लेन करने के लिए। हॉकर के हाथ में पैसे देकर ज़रा आश्चर्य के स्वर में बोले—

"जाने कहाँ से दुपैसी मिल गई!"

हॉकर ने भी उसी आश्चर्य में कहा, "ठीक है। रहने दें। मुझे तीन पैसी किसी तरह ढूंढ़ने पर मिल गई।"

अखबार लेकर नीलाम्वर बाबू घर की ओर लौट पड़े।

●

पण्डितजी की मृत्यु

पोथल गाँव के पण्डित विश्वम्भर नन्द की अपनी मृत्यु के बारे में एक स्पष्ट धारणा है। वे कब मरे, कहाँ मरे और उस समय आर्द्रा या मूल नक्षत्र कितनी घड़ी, कितने पल भोग हो चुका था—ये सारी बातें उनकी ज़बान पर थीं। गाँव वालों को सुना-सुनाकर कहा करते—इतना बड़ा गाँव है, कोई एक भी उन्हें नहीं बचा सका! उसी सातगछा झुरमुटे के पास, बाँके नाले के किनारे, कोई दबोच बैठा उन्हें। कितना ही पुकारा उन्होंने, किसी ने सुना ही नहीं। गावदी बेटा था, कुछ कर पाया? फिर कहने लगते कि उस दिन क्या तिथि थी, क्या वार था। चन्द्र शुद्ध था या नहीं। घात चन्द्र तक कितनी घड़ी भोग हो चुका था और कितनी घड़ी बाक़ी था। शनि चतुर्थ में आया नहीं···इत्यादि बातें। कहते, वह दिन था मँगसिर सुदी बारस। चिलचिलाती दुपहर। और पिछली रात कोई सियार हूँकते-हूँकते गुज़रा था उनके घर के आगे से।

मन लगाये बाहरी बरामदे में बैठे सामने दालान में दिख रही दीमक की बाँबी की ओर घूर रहे थे। बाँबी पर दीमक की क़तार लगी है, सुनारी पेड़ से पीले फूल झरकर चारों ओर बिखरे पड़े हैं। पास में नागफनी के वन में कोई तितली बैठी हुई धूप सेंक रही है। खाली आँख टिमटिमाते यह दृश्य देख रहे हैं। मन-ही-मन गुनगुनाकर अँगुली की पोर पर तिथि-नक्षत्रों का हिसाब करते हैं, ज़मीन पर रेख खींचते हैं।

उनका ध्यान टूट जाता, जब दो कुत्ते आकर देह चाटते हुए मैथुन शुरू कर देते। वह बरामदे से झपटकर कूद पड़ते और पत्थर फेंकते हुए दोनों कुत्तों को खदेड़ ले जाते गाँव की ओर। और तब कुछ छोकरे आकर उन्हें घेर लेते, हो-हा करते, तो वे फिर झपट्टे के साथ लौट आते। घर में अन्दर से किवाड़ बन्द कर साँकल लगा लेते।

विश्वम्भर नन्द उस इलाक़े के नामी ब्राह्मण थे। मन्त्र-तन्त्र, पूजा-पाठ, व्रत-त्यौहार और कुछ-कुछ कविराजी विद्या में भी उनका नाम था, उनके हाथ में यश था। तड़के उठकर नहा-धोकर पाट की धोती पहन जप करते। मन्त्रध्वनि से घर भर जाता। कुम्भक, रेचक, पूरक से लेकर प्राणायाम में षड्चक्र-भेद एवं कुण्ड-लिनी साधने तक पहुँचे हुए आदमी माने जाते थे। फिर कुछ थोड़ा-बहुत जलपान लेकर मजूरों, हलवाहों को खेत पर भेज देते। दो-तीन घण्टे बाद जाकर खुद

हाज़िर होते। इस बीच लोग-बाग—सिर्फ़ उसी गाँव के नहीं, आसपास के दस-बीस गाँवों तक के आते, मिलते उनसे। किसी के बच्चे को मिरगी आती है, किसी की बहू को गर्भपात हो गया है, किसी के यहाँ ग्रहशान्ति के लिए पूजा होगी, किसी के घर पर होम करना है। किसी के यहाँ विवाह या जनेऊ है।···इस तरह की कई बातों में सलाह-मशविरा होता। उनके बटुए में और काठ की छोटी पेटी में होतीं तरह-तरह की जड़ी-बूटियाँ। गोरोचन, रस सिन्दूर, कस्तूरी, बाघ-दन्त, कुम्भीपत्र, बज्रकपोत का हाड़, हिरन का सींग आदि। इसके अलावा भी वहाँ उनके हाथ की बनायी गोलियाँ, चूरण, अवलेह, लौह-प्रवाल-मुक्ता भस्म, वग़ैरह की पूछ थी।

पैंतालीस की उमर में पत्नी के मरने के बाद उनकी पूजा-पाठ और भी बढ़ गयी। बड़ी बेटी रमा का ब्याह कर, इकलौते बेटे सनातन को आदमी बनाने में लग गए। यही तो उनके अँधेरे घर का चिराग़—वंश का रखवाला! गाँव की पाठशाला से लेकर पास के हाईस्कूल में पढ़ाया उसे। कॉलेज भी भेजा। जनेऊ संस्कार और आगे चलकर शादी-ब्याह में हज़ारों रुपये खर्च किये। सनातन की स्त्री को बड़ी होने पर गौना कराकर ले आए और घर का सारा दायित्व सौंप दिया। बापू ही तो सनातन की दुनिया थे।

दोपहर बाद का समय तो कट जाता पुराण बाँचने में। बेटी और बेटा सनातन जब छोटे थे—पास बिठाकर उन्हें पुराणों की बातें बताते। अच्छा आदमी बनने की बात कहते। राम, लखन, हनुमान, विभीषण, सीता-सावित्री वग़ैरह के महान चरित्रों का बखान करते, समझाते। बेटा कालेज पढ़ने के दिनों छुट्टियों में गाँव आता तब घर के बरामदे में बैठे ऊँची आवाज़ में पुराण बाँचते। गीता के श्लोकों की टीका कर सुनाते···ताकि ये बातें घर में चरपाई पर लेटे हुए, कोई पत्रिका या उपन्यास पढ़ते सनातन के कानों में पड़ें···ताकि कहीं धर्मपथ से उसके पाँव न फिसलने पायें।

मगर अचानक उस दिन, पता नहीं क्या हुआ, विश्वम्भर नन्द सुबह खेत पर गये थे, फिर घर नहीं लौटे। साँझ ढलने तक बहू भोजन लिये बैठी रही—पति और ससुर की प्रतीक्षा में। बाद में अँधेरा घिरने पर सनातन लौटा था। चेहरा गम्भीर, सूखकर स्याह पड़ गया था।

रात एक पहर गए गाय चरानेवाला छोकरा भँवरा आया था खबर देने—सावंत जी चले गए हैं···अपने संगी के घर। संगी ने खबर भेजी है—उनकी तबियत बहुत खराब है! मुझे गाँव के सिरे पर देख कहा—घर पर खबर दे देना। मैं संक्रान्ति के बासी दिन लौटूंगा। बहू-बेटों से कहना—अपना ध्यान खुद रखें, मेरी बाट न जोहना।

मगर विश्वम्भर पण्डितजी नहीं लौटे। धनु-संक्रान्ति गयी, मकर-संक्रान्ति

भी आ गयी। और फिर पना संक्रान्ति (विषुव संक्रान्ति)। मगर पण्डित जी का कोई अता-पता नहीं। कहाँ हैं, किसी को ठीक से खबर नहीं। कुछ दिन मित्र के घर, फिर कुछ दिन घर-जँवाई बनकर बिताये। फिर पुरुषोत्तम क्षेत्र (पुरी) में कुछ दिन गुज़ारे। अन्त में, लोगों का कहना था, वे इस गाँव से उस गाँव फिरने लगे हैं, उनका दिमाग़ खराब हो गया बताते हैं। मैले-कुचैले कपड़े पहने रहते हैं, बिना खाये-पिये इधर-उधर फिरते रहते हैं। पहले तो पिता की बात पड़ती तो सनातन टाल-मटोल कर देता। कहता—उनकी बात वे जानें, मैं उन्हें क्या समझा सकता हूँ! पर बाद में सबके तक़ादे पर चारों ओर ढूँढ़ा-ढांढ़ा, मामा वग़ैरह को साथ लेकर गया और अब समझा-बुझाकर घर लाया है।

अब की पण्डित विश्वम्भर बिलकुल अलग ही हैं। हावभाव, मति-गति कुछ और ही है। ऊपर खास अस्वाभाविकता नहीं दिखती। मगर मृत्यु के बारे में कभी-कभी सोचकर वे अस्थिर हो उठते। अपनी मृत्यु के बारे में सबके आगे बताते। पूजा-अर्चन तो करीब-करीब छूट चुकी है। बस, नहा-धोकर कुछ समय ठाकुर जी के आगे बैठते नहीं, सो बात नहीं। या कि बहू कुछ कहती-सुनाती तो उसकी बात सुन लेते। वरना सनातन के संग तो बोलचाल प्रायः बन्द थी। और तो और, उसे देखते ही वे अपनी जगह से उठकर अन्यत्र चल पड़ते। कई बार डपटकर कहने-सुनने के बाद जाकर कुछ थोड़ा-बहुत खा लेते और फिर आकर बाहर बरामदे में बैठे रहते।

उस दिन गाँव में झामूयात्रा थी। सब जाकर गाँव के छोर पर जमा थे। बाजे-गाजे में, शंख-महुवरि में सारा गाँव मुखरित हो रहा था। सुनसान गाँव के रास्ते को देखते हुए बैठे हैं पण्डित विश्वम्भर जी अपने घर के बरामदे में।

सामने बाहर दालान में बाँबी है, दीमकों की क़तार लगी है। सुनहरी के पेड़ से पीले-पीले फूल झरकर बिखरे पड़े हैं।

अचानक शोरगुल सुनाई पड़ा। नन्दजी ने देखा, कुछ लोग किसी को उठाकर लिये उन्हीं की ओर आ रहे हैं। आकर सनातन को चित लिटा दिया। बड़ी सड़क पर साइकल से आ रहा था, सरकारी जीप से टकरा गया। सारी देह खून में सनी हुई है। सिर फूट गया है। हरि पण्डा ने कहा—"भैया! सनिया चला गया!" बिशू नन्द बड़बड़ा उठे, "इतना बड़ा हट्टा-कट्टा गबरू जवान! अभी था, कहाँ चला गया? कोई कुछ न कर सका?" और फिर वहीं हें···हें हँसी—अपनी मृत्यु का वर्णन कर हँसा करते। वह हँसी जितनी करुण, उतनी ही भयंकर होती। लगता, जैसे वह कोई हँसी नहीं। मृत्यु को चिढ़ाकर हँस रहे हैं। अदृष्ट की और आदमी की असहायता पर हँस रहे हैं। अपने आप पर अट्टहास कर रहे हैं।

सनातन की चिता के पास जाकर खड़े हैं—चुपचाप, निस्पृह, उदासीन,

करुण, द्वन्द्वभरी है वह निगाह ! उन्हें देखकर लगता है, जैसे कोई घुन-खाया खूंटा है—धकिया दो तो अभी टूट जाएगा। किसी ने कहा, "रुलाई ज़रूरी है। वरना और भी पागल हो जायेंगे। रुला दो उन्हें।" नरी मिस्सरजी ने आकर हिला दिया, फफकते से कहा, "बिस्सू भैया, सनिया चला गया ! सनिया कहाँ अब ?" पण्डित जी नहीं रोये। मानो आँखों में दृष्टि नहीं है। कोई दारुभूत मूर्ति बने खड़े कुछ क्षण बाद बोले, "चला गया ! जाने दो। कितना बुलाया, सुना क्या ? जहाँ मन करता है जाये !"

स्थिर अपलक देख रहे हैं। सनातन जल रहा है। सब-कुछ राख हो गया। "गया···सब जल गया ! अब क्या आएगा ?" किसी भयावह दुःख के सामने खड़े हैं, मानो उसी का हिसाब कर रहे हैं। उसे मन के रुद्ध दरवाज़े के अन्दर नहीं जाने देते। पर उन्हें लगता है जैसे कोई काला भालू उनकी ओर दनदनाता आ रहा है—नाखूनों से ज़मीन कुरेदता। मानो वे अकेले घर लौट रहे हैं। बहू को बुलाकर कहा, "दे···बेटी, उसका जो कुछ है, सब तोड़-फोड़ दे। वह अब और नहीं आएगा।"

इसके बाद नन्दजी को क्या हुआ, किसी का ध्यान न था। अन्त्येष्टि क्रिया, चिता शीतल, दशाह आदि क्रिया-कर्म के बाद सब ब्राह्मण-भोज में व्यस्त हो गये।

क्रमशः इन दिनों नन्दजी अपनी मृत्यु की बात और नहीं करते। धीरे-धीरे सब बिसर गए। वरन् खूब जीवन्त हैं—यही दिखाना चाहते हैं। कहा करते, इतना बड़ा गावदी चला गया ! मैंने इतना बुलाया, एक न सुनी ! मैं ही मर जाता, वह जीता रहता ! फिर असहनीय फफक के साथ रुलाई, घर भर जाता—ठीक वैसे ही जैसे जब स्वस्थ स्वाभाविक थे तब मन्त्र-ध्वनि से घर भर जाता था।

तनिक स्वस्थ-स्वाभाविक होने के बाद, वे फिर उस काले भालू के चक्कर में पड़ गये हैं। बस दरवाज़ा तोड़कर वह अन्दर नहीं आया, अपनी कँटीली जीभ से समूची देह चाटता जा रहा है···उसके पंजों से बचना मुश्किल है। वे बिस्तर पर पड़े हैं। सदा बस एक ही बात—"सनातन, सनातन ! सनिया, चला गया रे बेटे !"

अचानक उठ पड़े। बाहर की ओर क़दम बढ़ाये। सामने दालान में बाँबी में दीमक की क़तार लगी है। सुनारी पेड़ से पीले-पीले फूल सूनी धरती को ढँककर बिछे पड़े हैं। पास नागफनी के झुरमुटे में कोई गिरगिट कुछ दूर बैठी तितली की ओर घात लगाये बैठा है।

वे नहीं सँभल पाए। धड़ाम से गिर पड़े। बैद जी ने आकर नाड़ी देखी। गम्भीर हालत सुनकर उन्हें आँगन में तुलसी-चौरे के पास ले आये। बहू ने आकर तुरन्त गंगाजल दिया। निर्माल्य दिया। फफक उठी। सब-कुछ सुनसान ! इतने लोग घेरे बैठे हैं उन्हें। किसी के मुंह में शब्द नहीं ! सब चुपचाप !

उसी चिलचिलाती धूप में घबरायी-सी आकर पहुँची एक औरत—जानी—जानकी—नन्दजी की पुरानी नौकरानी ! "सामन्त चले गये !···सामन्तजी चले गये !" बिलखती-बिलखती आ गयी। उनके पाँव पकड़ रोने लगी। लेकिन···"अरे···रे छूना मत ! छूना नहीं !" रोकते हुए मालभाई (शववाहक) कह उठे। वह तनिक हटकर जा बैठी। भूल गई थी वह कि जाति से अछूत है। नन्द पण्डित जी के पांव छूने का अधिकार उसे नहीं।

कुछ देर बैठने के बाद वह धीरे-धीरे वहाँ से हटकर निकल आयी। उसके साथ आयी थी बचपन की सहेली सेवती। दोनों वहाँ से चल पड़ीं मशान की ओर, जहाँ सामन्तजी का अन्तिम दर्शन कर सकेंगी।

धू-धू चिलचिलाती धूप ! सूने मशान में जानकी प्रतीक्षा कर रही है, कब विशंभर पण्डितजी की अरथी आएगी !

थोड़ी देर बाद सुनाई पड़ा—"राम नाम सत्य है !" "राम नाम सत्य है !" जानी ने कहा, "वो आ रहे हैं !" शवयात्रा क्रमशः पास आती जा रही है।

सेवती से उसने कहा, "चल, अब चलें !"

सेवती बोली, "फिर आयी क्यों ? कह रही थी कि अन्तिम क्रिया देखेंगे !"

"नहीं, चल !"—जानी ने कहा।

कुछ दूर चलने पर जानी ने फिर से कहा, "यहाँ इस पेड़-तले ज़रा सुस्ता लें।" तब तक उधर मशान में कड़-मड़ चड़-चड़ के साथ धुआँ ऊपर आकाश में उठने लगा था। शायद मुखाग्नि दी जा चुकी थी।—आग सुलग उठी है।

जानी ने कहा, "तुझे बताऊँ, बताऊँ—कई बार मन में आया। मगर, आज कह दूं तुझे एक बात ? इतने दिन हुए, आग-सी सुलग रही है मेरे अन्दर।··· सामन्त जी की उस खेत पर छोटी क्यारी से सटकर वो जो सातगछी अमराई है—ठीक वहीं···"

सेवती ने कहा, बात बीच में काट कर, "हाँ-हाँ, सामन्त वहीं तो, मुए सिर खराब होने की बात कहा करते हैं। वहीं कोई दबोच बैठा उन्हें।"

मगर जानी ने अपनी बात जारी रखी – "उस दिन···मँगसिर का महीना, धान की मँड़ाई होने से पहले···सुनसान दुपहर। हवा ठण्डी-ठण्डी बह रही थी। खेत में थी अकेली मैं···सामन्त आ पहुँचे ! बोले, 'री ! यहाँ का करती हो ? चल अमराई की ओर क्यों नहीं चलती मेरे साथ ?'

दोनों जाकर नाले की पुलिया के पास पहुँचे। अचानक सामन्तजी ने हाथ पकड़ खींच लिया—उस···वो झुरमुटा···उसी की ओर ! मेरी देह को पहली बार मरद ने छुआ था··सिहर गई एकबारगी···!

कितनी देर हो गई, जान भी न पायी। दोनों खो गए थे एक-दूसरे में। सामन्त जी की गरम साँस मेरी देह में सरसराती गहरे तक चली जाती। और

फिर खसखसाहट सुनाई पड़ी। वह आवाज़ धीरे-धीरे पास आ गयी। किसी ने ऊँची आवाज़ में पुकारा—'बापू !' हम दोनों खड़े हो गए। देखा, तो उधर छोटे बाबू खड़े थे। गाय खोजने आये थे। सामन्त ने धोती ठीक कर ली। मैं तो लाज से एकदम मर ही गई !

और फिर छोटे बाबू मुड़कर चले आये। सामन्त पीछे-पीछे, 'सनातन··· सनातन···' कहते जा रहे थे। छोटे बाबू ने एक बार भी मुड़कर नहीं देखा। गाँव के छोर तक चले आये। बाप-बेटे दोनों, दोनों उस छोर तक आये। फिर सामन्त जी ने मुँह मोड़ लिया और चल पड़े। कहाँ गए, कई दिन तक किसी को कोई खोज-खबर न मिली।"

जानी की बात पूरी हुई तब तक विश्वम्भर नन्द जी राख बन चुके थे, उनकी मृत देह—लिंग देह—सब-कुछ पंचभूत में मिल चुका था।

●

ब्रह्मपुर बस-स्टैण्ड !

दोनों समधी तेज़ी से जा रहे हैं, बस पकड़ने। भुवनेश्वर जाना है। बड़े समधी पहले से कह रहे हैं—जल्दी-जल्दी चलो ! बस छूट जायेगी !" पीछे से छोटे समधी जवाब दे रहे हैं—चल तो रहा हूं···करूं क्या, पंडेई (चप्पल) जो छोड़ आया···"

बस-स्टैण्ड तरह-तरह की आवाज़ों से भरा है। केले, ककड़ी, मूंगफली, रासी लड्डू (तिल के लड्डू) नई पंजिका (पंचांग) दैनिक भाग्यफल बेचने वाले की पुकार के साथ बस कण्डक्टर की कानफाड़ आवाज़—

टिकिटी ! चिकिटी !

मांउसी ! मांउसी !

कटक ! कटक !

दोनों समधी रिक्शे से उतरे और राजधानी की बस की ओर चल पड़े। एक तेलुगु कुली और एक उड़िया कुली छोकरा—दोनों ओर से आकर उनका सूटकेस, अटैची खींचने लगे। एक कहने लगा—'पहले मैं आया।' छोटा कुली अटैची छोड़ता ही नहीं। बड़ा उसके मुंह पर घूसा तान कहता—'ऐसी एक मुक्क जमाऊंगा कि थोबड़ा वारसट्, हेड आड्रेस गायब हो जायेगा। छाती धुक्-धुक् करने लगेगी।'

दोनों समधी जाकर बस में बैठ गए। बस चल पड़ी। छत्रपुर कचहरी का चौराहा पार करने ही वाले थे। छोटे समधी कुछ चने-मूंगफली खरीद कर खुद भी चबा रहे थे और बीच-बीच में बड़े समधी की ओर ठोंगा कर देते···। छोटे समधी ने कहा, "दस ऊपर आध घण्टे में पहुँच जाने की बात है। फास्ट आवर में आंडर सिकेटरी से मिल लेंगे। मगर पहले जाकर इन्तज़ार करना होगा जी !" बड़े समधी ने पूछा, "आंडर सिकेटरी क्या है ?" जवाब मिला—

"अरे समधी, इतना भी नहीं जाने हो ? सिकेटरी के ठीक नीचे वाला जी !"

रास्ते में छोटे समधी समझा रहे थे, "आंडर सिकेटरी से मिलकर फिर कितनी-कितनी जगह जाना है ! टरांसपोट डिपार्ट, उपमन्त्री सिकेटरी और अन्त में जाकर मन्त्री जी ! ठीक-ठीक पन्द्रह हज़ार तो निकल जायेंगे जी ! आखिर में

ट्रेजरी में जा कर रुपये जमा करना होगा जी ! तब जाकर परमिट की कोई बात…"

बात असल में ये है कि बड़े समधी ब्रह्मपुर लाइन में एक बस डालना चाहते हैं। छोटे समधी ने बस-परमिट से लेकर रूट-परमिट और बस चलाने तक का सारा दायित्व अपने सिर पर लिया है। सुबह नौ बजे से ही कैसी उमस है ! बस में बैठना भी मुश्किल हो रहा है। पसंजेर लोग पसीना-पसीना हो रहे हैं। फिर बस पर लदे हैं मछली के टोकरे—ताज़ा समुद्री मछलियों से भरे ! टोकरों से पानी चू रहा है। हवा में छींटे आकर यात्रियों पर गिर पड़ते हैं। आमिषी गन्ध से नाक फटी जा रही है। एक ओर के पैसेंजर खड़े-खड़े हो-हल्ला करने लगते हैं, तो क्लीनर बस रुकवा कर टोकरों को दूसरी तरफ़ कर देता है। फिर दूसरी ओर के पैसेंजर हल्ला मचाने लगते हैं तो टोकरों को इधर सरका देता है।

पैसेंजरों को ठण्डा किये रखने के लिए ड्राइवर ने रेडियो खोल दिया है। रेडियो प्रोग्राम खतम होने पर टेप चालू हो जाती है। गीत आ रहा है—

"से तो पुरूणा मडेल गाड़ी।
ब्रेक नाईं तार, हर्ण नाईं तार
जाउ थाए गड़ि गड़ि।
हाय मो पुरूणा मडेल गाड़ी।"

(वो तो पुरानी मॉडल की गाड़ी है, जिसमें न ब्रेक हैं न हॉर्न, बस लुढ़कती-लुढ़कती जा रही है। हाय री ! मेरी पुराने मॉडल की गाड़ी !)

फिर पति-पत्नी के द्वैत स्वर में उपसंहार—

"पुरूणा घरणि किए ताहा सरि !
नुआ ठुसे बढ़ि…बढ़ि…"

(पुरानी गृहिणी, कौन है उस जैसी ! वह तो नई से भी बढ़ कर है। नई से भी बढ़ कर है…)

एक-दो पैसेंजर ने बीच में टिप्पणी कस ही दी—इन गीतों का स्टैंडर्ड कितना गिरता जा रहा है ! दो वकील ड्राइवर के बग़ल वाली आगे की सीट पर बैठे थे। उनमें से एक कह उठा, "अब क्या उपेन्द्रभंज या कविसूर्य बलदेव रथ, गोपालकृष्ण पटनायक, अथवा बनमाली दास हैं ? अब तो लारे-लप्पा का ज़माना है ! कभी यह राष्ट्रीय गीत बन जायगा, इसकी सम्भावना से भला इनकार कर सकते हैं ?" दूसरे ने जोड़ दिया, "हालाँकि और कई आधुनिक भाषाओं का स्टैण्डर्ड काफ़ी ऊँचा है। पिछले साल कलकत्ता गया था। उफ् ! कितने बढ़िया गीत सुनकर आया था वहाँ से…क्या कहना !"

ड्राइवर ये बातें सुन रहा था। चेंज कर एक बँगला टेप लगा दी। उड़िया हिन्दी, बँगला, तेलुगु…हर तरह के टेप हैं। कोई कमी नहीं। गीत आने लगा—

"आमार खोकार मासी
आमाय देखे मुरकि हंसी
(से जे) अम्रिता वाला दासी
आमाय देखे मुरकि हंसी
हाशिते थाके सर्वनाशी—
आमि तार जन्मे जाबो जेले
परबो गलाय फांसी।"

(हमारे छोकरे की मौसी, हमें देख हलके से हँस पड़ती है। अमृतवाले की दासी हमें देख हँस पड़ती है! हँसी तो जानलेवा है उसकी! हमें उसके लिए चाहे जेल जाना पड़े, चाहे गले में लगानी पड़े फाँसी!)

गीत का मर्म सब के हृदय को छू रहा था। श्रोता कुछ क्षण चकित और स्तब्ध रह गए। किसी ने पूछा, "बाबू रे, जेल क्यों? फाँसी क्यों? क्या किसी का खून करना है?"

हुम्मा से चढ़े एक यात्री ने कहा, "अरे रे···खून करने क्या और लोग नहीं मिलते? क्यों अपनी स्त्री, सास, ससुर, साला कोई बाधा देगा!"

बस आकर राजधानी में आधा घण्टे लेट पहुँची। बढ़िया-बढ़िया मकान! चौड़े-चौड़े रास्ते! सुबह दस बजे भी सुनहली रोशनी वाली बत्तियाँ बुझी नहीं। बिजली विभाग की मेहरबानी है! चाहे रात में हज़ार-हज़ार बत्तियाँ न जलें गली-कूचों में।

× × ×

तो परमिट मिल गया। एस.एफ.सी. (स्टेट फाइनांसियल कार्पोरेशन) से ऋण भी मंजूर हो गया। और बस भी आ गई। अब बड़े समधी जी (नारायण पलाई, जेमादेइ पैठ वाले) और छोटे समधी (के. वी. रघुनाथ पात्र, चेलापल्ली वाले) दोनों को चिन्ता यह हुई कि बस का नाम क्या दिया जाय? सौदामिनी, सुहागिनी, तारकेश्वरी, बनदुर्गा, या कुछ और? आख़िर तय हुआ—'रं ग ल ता।' यही नाम तो बड़े समधी की स्त्री का है। उन्हें मरे छह वर्ष हो चुके हैं। समधी ने अब दूसरा काम सम्हाल लिया है। छोटे समधी हो गए बस के पूरे तत्वाव-धारक। सारा हानि-लाभ उन्हीं के जिम्मे रहा।

बस चालू हुए पूरे-पूरे दो वरस हो गए हैं। टिकट अधिक नहीं कटती हैं। माल-वाल ढोया जाता है, लेकिन पैसा अधिक नहीं आता। कभी-कभी ड्राइवर और क्लीनर की तनख्वाह के पैसे भी पूरे नहीं पड़ते! ऋण का ब्याज तो बढ़ता ही जा रहा है। आखिर बड़े समधी ने ध्यान दिया। किसी दूसरी बस में जाकर गंजाम, हुम्मा या रम्भा में टोह ली। अचानक 'रंगलता' में चढ़कर टिकट, यात्री, माल वग़ैरह की जाँच की। काफ़ी गड़बड़ मिली। कई बार बस में छोटे समधी

से आमना-सामना भी हुआ। छोटे समधी यों छोड़ने वाले थे ? "मैं इतना धन्धा नहीं कर पाऊँगा ! ये चला !"

एक दिन खल्लीकोट घाट वाले रास्ते पर दोनों समधियों के बीच तू तू-मैं मैं हो गई। बड़े समधी ने देखा, कई यात्री सामान लेकर उतर गए हैं। लेकिन टिकट कटी हैं दो-चार ! ग़ुस्से में पूछा, "रुपये कहाँ गए ?" छोटे समधी ने कहा, "आप को यदि इतना अविश्वास है तो आप का हमारा धन्धा आज से खत्म ! और ज़िन्दगी में कभी मुँह नहीं देखूँगा !"

उस दिन से दोनों के बीच भेंट-मुलाक़ात बन्द है। कुछ दिन बाद छोटे समधी ने अपनी बस चालू कर दी। उनको तो सारे इल्लम पहले से पता हैं। कोई कठिनाई नहीं हुई। बस में फॉरेन का रेडियो लगाया गया। बढ़िया-बढ़िया सिनेमा हीरो के फोटो जड़वा कर टाँगे गए। कीमती रेग्ज़ीन की गद्दियाँ। बस का नाम भी रखा गया—'सुपर रंगलता !'

ब्रह्मपुर से कटक और कटक से ब्रह्मपुर रास्ते में दोनों समधियों की दो रंगलता चलने लगीं। दोनों ठाठ से जातीं, देखने वालों की आँखें ठगी-सी रह जातीं। लोग हाट-बाज़ार छोड़ रास्ते किनारे खड़े होकर दोनों की घुड़दौड़ का खेल देखते।

कौन किसे पार करती है ! पिछली बस का क्लीनर हाथ बढ़ाकर चिल्ला कर कहेगा, "वुद्धू"—मानो कोई पतंग दूसरी को काट दे और बच्चे चिल्ला रहे हों। देखने वालों के मन में खूब कौतूहल भर जाता है।

दोनों बसें यों दस-पन्द्रह मिनट के अन्तर से छूटती हैं। रास्ते में भेंट होने पर आगे निकलने को आतुर हो उठती हैं। दोनों के बीच होड़ चल पड़ती है। एक रास्ते में यात्री उतारने या माल उतारने में देर कर देती है, या जहाँ हाल्ट न हो वहाँ भी यात्री चढ़ाने लगती है, तो दूसरी बग़ल से रास्ता काट ताली मार सर्राटे से आगे बढ़ जाती है। इसके बाद पीछे रह जाने वाली बस को उसका पता भी नहीं मिलता रास्ते भर।

रोज़ की तरह उस दिन भी दोनों रंगलता ने सुबह कटक बस-स्टैण्ड छोड़ा। 'सुपर रंगलता' में कुछ पुरी के यात्री चढ़े हैं। भुवनेश्वर उतरकर बस बदल लेंगे। कुछ अध्यापक, कॉलेज के लड़के, डेली पैसेंजर, हाईस्कूल की टीचर्स (जो कुछ दूर जाकर अपनी-अपनी जगह उतरेंगी) और एक ऑपेरा-पार्टी के कुछ लम्बे बालों वाले लोग।

पुरी के दो यात्री आपस में गप्पें शुरू कर चुके थे। एक ने कहा, "समझे जी ! श्रीक्षेत्र में मौनावतार विराजमान हैं। उनकी महिमा आदमी क्या जाने ? ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण, नारद, सनक तो युग-युग तपस्या के बावजूद नहीं जान पाये।"

दूसरे ने कहा, "मौनावतार क्या है ? शास्त्र-पुराणों में तो कहीं यह नाम मिलता नहीं ! मत्स्य, वराह···!"

पहले ने बात रोक कर कहा, "नहीं-नहीं···है। मौनावतार है। जब कलि-युग आया, तब भगवान ने कलि को पुकार कर कहा, 'जा, तू पड़।' कलि ने हाथ जोड़ कहा—'महाप्रभु, पड़ूँगा नहीं। आप को जो करना हो, कर लें।'

भगवान घोर समस्या में पड़ गए। द्वापर के बाद कलि अगर न पड़े तो सृष्टि का नाश हो जायगा। कलि को भगवान ने फिर समझाया। पीठ थपथपायी, 'क्यों नहीं पड़ेगा ? फिर दुनिया चलेगी कैसे ?'

कलि ने कहा, 'मैं पड़ूँगा तो जो कुछ होगा सब आप जानते हैं। चारों ओर घोर भ्रष्टाचार घिर जायेगा, बेटा बाप को नहीं मानेगा। शिष्य गुरु को पीटेगा। घी में गाय की चर्बी और तेल में जला हुआ मोबिल धड़ल्ले से बिकेगा। दुकान-दार इन सब चीज़ों को खोटी-अशुद्ध बेचेंगे। झूठ और घूस का धरती पर बोल-बाला होगा। मन्त्री, एम.एल.ए. सब घूसखोर बन जायेंगे। काले धन से देश भर जाएगा। खुशामदियों की बन आयेगी। दिन-दहाड़े खून, डकैती, लूट, नारी-धर्षण होंगे—और आप ये सब सह नहीं पायेंगे। ज़रा-ज़रा-सी बात में दौड़े आयेंगे और मुझे डाँटेंगे, हिदायत देंगे। मैं इतने झंझट में पड़ना नहीं चाहता, खामखाह।'

भगवान विष्णु ने टोक कर कहा, 'बस-बस ! मैं सब जानता हूँ। यह सब होगा। मगर इसी में हमारी महिमा प्रकट होगी। तुम्हें अलबत्त पड़ना होगा। मैं वादा करता हूँ, तुम्हारी किसी बात में ज़बान नहीं खोलूँगा। मौनावतार हो कर बैठा रहूँगा !' और तब से भगवान मौनावतार बन कर शंख-क्षेत्र (पुरी का एक नाम) में विराज रहे हैं···।"

इधर दोनों विज्ञान के अध्यापक आपस में तर्क में उलझ चुके थे। उनकी आलोचना क़रीब-क़रीब चरम सीमा तक पहुँच चुकी थी। चर्चा का विषय था—गतितत्त्व। प्रकाश की गति समय को लाँघ जायेगी। कोई वस्तु प्रकाश की गति पा ले, तो फिर समय काम नहीं करेगा।

ठीक तभी—रंगलता पीछे से हॉर्न बजाते हुए तेज़ी से आ रही है। रास्ता देने के लिए संकेत दे रही है। संयोग ऐसा कि उस दिन छोटे समधी ड्राइवर की सीट के पास बैठे थे। ड्राइवर को हुक्म दिया—"दौड़ा दो ! साइड न देना।" पिछली बस में बड़े समधी थे। उनका हुकुम था—"हर हालत में अगली गाड़ी को क्रास करना है—पार कर दो।" और दोनों बसें जान की बाज़ी लगाकर भागी जा रही थीं।

कभी 'रंगलता' अगली बस के बगल में जाकर आगे निकलने की चेष्टा करती तो 'सुपर रंगलता' फर्राटे से आगे निकल जाती। कोई किसी को रास्ता नहीं देती।

अध्यापकों के तर्क-वितर्क में सरगरमी आ चुकी थी। एक कहने लगे, "चालीस बरस पहले हमारी गति थी—बैलगाड़ी से प्रतिघण्टा चार मील या

घोड़े पर बीस मील। अब हम क़रीब-क़रीब शब्द की गति हासिल कर चुके हैं—राकेट की सहायता से। आदमी का लक्ष्य है प्रकाश की गति हासिल करना। तब वह समय को जीत सकेगा। चन्द्रमा से प्रकाश को हम तक आने में एक सैकंड से कुछ अधिक लगता है। आदमी यदि महाकाश में तीन प्रकाश-वर्ष बिता आये, तो यहाँ हमारी धरती पर तीन सौ वर्ष बीत चुके होंगे। कितनी विचित्र है यह गति!"

'रंगलता' दौड़ती आ रही है। बस, पार कर ही जायेगी, मगर 'सुपर रंग-लता' और तेज़ हो गई। दाहिनी ओर मेटल और मोरम का ढेर। रास्ता काटकर आगे जाने में कोई डर नहीं। छोटे समधी घुटनों के बल झुक कह रहे हैं—"चला और तेज़ कर! दौड़ा दे···निकल जा! देखें, कैसे जाता है!"

बड़े समधी पीछे 'रंगलता' के ड्राइवर से कहते हैं—"चला यार! और ज़ोर से! जो होगा, मैं हूँ। देख लूँगा।"

दोनों ड्राइवर स्टीयरिंग पर झुके पसीने में तर-बतर चला रहे हैं। पैसेंजर भी अपनी-अपनी सीट पर से उठकर—'चला-चला!' की आवाज़ लगा रहे हैं। कोई नहीं चाहता कि पिछली बस उन्हें पार कर जाये। पिछली बस के यात्री भी हो-हल्ला कर रहे हैं—'चला, चला···और ज़ोर से! अगली बस को हर हालत में पार करना है। जीत ले बाज़ी!'

एक अजीब नशा सब पर चढ़ा हुआ है। सब मानो मतवाले हो रहे हैं इस कम्पटीशन के नशे में। दोनों बसों के यात्री, बस, कहे जा रहे हैं—"चला, और ज़ोर से चला!" कोई हार मानना नहीं चाहता। यह विजय मानो सबकी विजय है।

दोनों अध्यापक अब तक यह उत्तेजना देखते रहे। अब दोनों उठ पड़े। रूमाल हिलाकर सब के साथ ड्राइवर को उत्साहित करने लगे।

रास्ते के किनारे वाहनों की गति नियन्त्रण करने के लिए गड़े खम्भे एक के बाद एक तीर की तरह पीछे छूटते जा रहे हैं—

"द मिनट यू सेव बाइ स्पीडिंग मे बी योर लास्ट!"

"स्पीड इज़ थ्रिलिंग, बट किलिंग!"

मगर उधर किसी का ध्यान नहीं। सामने नमक की बैलगाड़ी आ रही है। ज़रा गीयर बदल कर फिर पहले वाले गीयर में लौट जाने की व्याकुलता। ऐक्सी-लरेटर पर से पाँव हटाये कौन!

आगे है ऋषिकुल्या नदी का पुल। यहाँ अगर बग़ल से नहीं निकले तो फिर आगे नहीं जा सकेंगे। 'रंगलता' हॉर्न देकर किनारे आ गई। 'सुपर रंगलता' रास्ता रोकने जाकर खूब ज़ोर से उससे भिड़ गई। एक ज़ोरदार धमाका! आस-पास के लोग-बाग चौंक पड़े।

आगे पेड़…।

…   …

और फिर सब समाप्त !

अगले दिन अखबारों में छपा—"ऋषिकुल्या नदी वाले पुल पर दो बसों में टक्कर होने के कारण दोनों बसें उलटकर चकनाचूर हो गईं। घटना-स्थल पर ही दोनों बसों के मालिक, ड्राइवर और क्लीनरों की मृत्यु हो गई। दस यात्रियों की भी दोनों बसों में जानें गई हैं। अनेक यात्री गंभीर रूप में घायल हो गये हैं। आहतों को इलाज के लिए ब्रह्मपुर मेडिकल कॉलेज में भर्ती करा दिया गया है। पता चला है कि आहतों में दो अध्यापक भी हैं। बताया जाता है कि उनकी हालत गम्भीर है।"

●

जंगल

इस जंगल का कोई खास नाम नहीं। पूरा इलाक़ा ही करमल कहलाता है। फिर भी स्थानीय लोग पास वाले हिस्से को बेरेणा-लता कहते हैं। नटवर फ़ॉरेस्ट-गॉर्ड बनकर इधर आया है। दो वर्ष में ही यहाँ अच्छी तरह आसन जमाकर बैठ गया है। जंगल के ठेकेदार के साथ उसकी सुलह है। कुचला का ठेका लिया है, लेकिन बड़े-बड़े साल, पी-साल काटकर ट्रक में भर ले जाते हैं। सुना तो यहाँ तक जाता है कि नटिया मोटी रक़म लेकर उन्हें छोड़ देता है या फिर जाली चालान दे देता है, यह बात रेंजर बाबू से कई बार कही जा चुकी है। कितनी ही रिपोर्ट ऊपर भेजी गई हैं, लेकिन कुछ नहीं होता। लोगों का कहना है कि नटिया की जेब में हैं ऊपर वाले। हालांकि जंगल इसी बीच साफ़ होता जा रहा है। कोई उसका बाल बाँका नहीं कर सकता। नटिया रूपास गाँव में चाय की दुकान के आगे बेंच पर बैठा चाय पीते-पीते मूँछों पर ताव देता है—"देखेंगे, कौन साला मेरा क्या बिगाड़ लेगा! इस लट्ठ से खोपड़ा खोल दूंगा।"

उस गाँव का डाकिया भ्रमर पर अधिक नाराज है। कभी-कभी सोचता है—पीट-पीटकर मार डालूं और लाश लेकर जंगल में फेंक आऊँ। किसी को पता भी नहीं चलेगा। थाने में जमादार बाबू के साथ बैठ-उठ है उसकी। एक-दो बार बुलाकर थाना-बाबू ने लकड़ी की चोरी के बारे में पूछताछ की है। नटिया की कैफ़ियत से वे सन्तुष्ट हैं—।

भ्रमर ने नटिया के दूर के रिश्ते की मौसी की जायी बहन से ब्याह किया है। सुलोचना को घर लाने की बहुत इच्छा थी। इसके लिए उसने कुछ भी उठा नहीं रखा। शरधा जीजी, केलू बाबा आदि को बीच में रख दामा पुहाण बाबा को बहुत समझाया। लेकिन उसकी वह लफंगाई आदत, उसके बेढंगे स्वभाव को देखकर माँ-बाप या सुलोचना कोई राज़ी नहीं हुए। फिर भी वह कभी-कभी ठेका या बदले में काम कर लेता है। कोई फ़ॉरेस्ट गार्ड छुट्टी पर जाये तो महीने दो महीने उसकी जगह काम कर लेता है, फिर वही बेकार का बेकार!

नटिया ने उस दिन सुलोचना को पोखर के पास धमकाया था, "देखता हूं, तुझे कौन ब्याहता है? मैं ठिकाने बिठा दूंगा!" आज तक सुलोचना भूली नहीं है वह बात! नटिया की भंगिमा और आवाज़ कभी-कभी याद आ जाती है तो

वह घबरा-सी जाती है।

नटिया बनाम नट, बनाम नटवर की मोटी-मोटी बाघ-जैसी मूँछें, उन पर चिपटी नाक और हड़ीले गाल देखकर कोई भी डर जायेगा। बचपन से ही सुलोचना को उससे कोफ़्त रही है। फिर उसकी टेढ़ी-मेढ़ी आदत, कड़ा मिज़ाज और उस पर उसका आगे बढ़कर मामलातकार बनने की आदत—शुरू से ही उसके प्रति मन में घृणा भर चुकी है। अब तो लम्बे-लम्बे बालों और मूँछों की कली के कारण तो एकदम अजीब लगता है।

उस दिन गाँव में यात्रा (मेला) हो रही थी। जबरा ऑपेरा पार्टी 'कंसासुर-वध' स्वाँग (एक तरह का नाटकीय प्रदर्शन) रच रही थी। भ्रमर और सुलोचना गाँव में स्पप्नेश्वर महादेव के मन्दिर के प्रांगण में यह स्वाँग देख रहे थे। नट भी एक पिक्का सुलगाये हुए यात्रा देख रहा था। बीच-बीच में जब सखी का कोई नाच-गीत आता तो वह अश्लील टिप्पणियाँ करने से नहीं चूकता। यात्रा खत्म होने के बाद धक्कम-धक्की करते सब लोग भीड़ में लौट रहे थे, सुलोचना को लगा, बायीं ओर पीछे से किसी ने हाथ बढ़ाया है। कसकर उसकी छाती को भींचकर भीड़ में कहीं ग़ायब भी हो गया। चीखती-सी उसने भ्रमर को आवाज़ दी। भ्रमर कुछ क़दम पीछे छूट गया था। उसने दौड़कर आगे आकर पूछा, "क्या बात है ?"

आगे नटिया जा रहा था। उसे दिखाकर इशारा किया। भ्रमर ने जाकर पीछे से नटिया को धर पकड़ा। नटिया बहाना बनाते हुए बोला, "क्या···क्या बात है ? किसके बदले किसे पकड़ रहे हो ?"

दोनों में तू-तू मैं-मैं हो रही थी—कुछ लोग इकट्ठा हो गए। आखिर बीच-बचाव हुआ। नटिया और भ्रमर दोनों ने एक दूसरे को कहा—"ठीक है, देख लेंगे !"

तब से सारे गाँव में यह बात फैल गई कि नटिया और भ्रमर में ठन गई है। जल्दी ही कुछ घटेगा !

दो दिन बाद। हाट वाले दिन मदन साहू की दुकान के आगे नटिया ने सबको सुनाकर कहा, "मैं उसका ख़ून पी जाऊँगा।" उधर भ्रमर भी कुछ दूर काँसा-पीतल की दुकान के आगे सना बेहरा को सुनाकर कह उठा, "मैंने उसे ख़त्म न कर दिया तो मेरा नाम भ्रमर साहू नहीं !"

क्रमश: दिन बीतते गये। लोग-बाग धीरे-धीरे नट-भँवरे के झगड़े-झंझट की बात भूल गये। छह-सात महीने निकल गये इसी तरह। एक दिन भोर तड़के ही सुलोचना जंगल की ओर से दौड़ी-दौड़ी हाँफती-सी आकर घर में घुसते ही अचेत ! भँवरा और कुछ युवक उधर पास खड़े बतिया रहे थे। दौड़ आये, किसी तरह सुलोचना को होश में लाये। पूछा, "बात क्या हुई ?" सुलोचना ने बताया,

"सांझ तक वछिया जब नहीं आयी तो ढूंढ़ने मैं जंगल की ओर गयी थी। कोई झुरमुटे से निकल अचानक आ झपटा। खींचा-तानी चली। आम के पेड़-तले खींचता ले गया। जान बचाकर किसी तरह भागी गिरती-पड़ती आ गई। वावरानियाँ काँटी का बोझ लिये जंगल से लौट रही थीं। उन्होंने भी हल्ला मचाया। मगर वह तो अँधेरे में भाग छूटा।"

"कौन था वह ?" सबने एक स्वर में पूछा।

"नटभाई !" सुलोचना ने धीरे से कहा।

बस भंवरा के सिर भूत सवार। फरसा लेकर नटिया के घर की ओर तेजी से चल पड़ा। साथ थे चार-पांच छोकरे। हाथ में लाठी लिये वे भी लैस। नटिया पिछवाड़े बाड़ी में से होते हुए जंगल में भाग गया। आठ-दस दिन तक गाँव में दिखायी ही नहीं पड़ा। इसके बाद जब गाँव लौटा तो भँवरा उसकी ताक में रहने लगा।

गाँव में काना-फूसी हुई—बस अब दो में से कोई जायेगा। गाँव के नाले के पुल पर बैठा पैर हिलाते हुए नट कह रहा था—सबको सुना सुनाकर, "अब की देख लूंगा उसे !" भँवरा भी महादेव मन्दिर के आगे सबको सुनाकर कह आया, "उसे जब तक जिन्दा न जला दिया, चैन से नहीं बैठूंगा।"

गांव में कुछ युवकों में चर्चा चली—देखना है, अब पहले कौन किसे खत्म करता है। भगवान ही जानें।

बरसा शुरू हो गई है। बिजली और बादलों की गड़गड़ाहट से सारा जंगल काँप उठा। मलाशुणी नदी और गाँव के बीच से गुजरते नाले का पानी उफनकर चारों ओर फैलने लगा। सुबह तक सारे गाँव में घुटनों तक पानी। उधर जटिया पहाड़ के सिरे से धार आकर चारों ओर भर रही है। बाँस का बेड़ा बनाकर लोग आवाजाही कर रहे हैं। गाँव के बीच में ऊँचे टीले पर दाल, चावल, सब्जी लाकर रसोई पका रहे हैं। लोगों के घरों में पानी भर गया है। हर वर्ष कुछ दिन गाँव वालों को यही सब भोगना पड़ता है। सबके घर एक-एक डोंगी बाहर वाली छान से बँधी होती है। गाँव में बाढ़ का पानी घुसने पर लगातार छः-सात दिन इधर-उधर डोंगी से ही जा-आ पाते हैं—यहाँ तक कि निकट के अड़ोस-पड़ोस में भी। बाढ़ के साथ आती है महामारी, खाँसी-सर्दी, बुखार, हैज़ा—। टीले पर छोटा-सा स्वास्थ्य-केन्द्र है। कोई-कोई डोंगी में जाकर वहाँ से दवादारू ले आता है। कोई मर जाये तो "जै गंगा मैया ! तेरी शरण···" कह बहा देते हैं। बरसा के बाद परवल, गोभी, टमाटर, बैंगन आदि खूब होते हैं। परवल तो पच्चीस पैसे किलो हो जाती है। गाँव वाले सब्जी लाकर कटक में डेढ़ रुपये किलो में बेचते हैं। फागुन-चैत में फूलों की महक, आम और वकुल की सुगन्ध से समूचा जंगल बौरा जाता है।

सारा जंगल ऐसी बरसा-हवा में दुलक रहा है। रात होते ही अँधेरे में पेड़-पौधे कुछ नहीं दिखते। सब मिलकर अंधेरे का अंश बन जाते हैं। जीवन का जैसे निशान भी नहीं रह जाता। कहीं कोई संकेत नहीं रह जाता।

जंगल में भी बाढ़ का पानी भर गया है। सांप, गीदड़, सियार, हिरण वग़ैरह पानी की धार में आकर गाँव के किनारे लगते या उस अकूत जल में बह जाते।

बरसा कुछ थम गई थी। नट एक डोंगी में बैठा जंगल की ओर चल पड़ा। साथ लिये है छाता और लालटेन। आज उसकी चेक-गेट पर ड्यूटी है। गेट के पास की गुमटी में वह खिड़की-दरवाज़ा सब बन्द कर बैठ गया है। आँधी-बरसा का मौक़ा देख कंट्राक्टर का ट्रक भी जगल में घुस आया। बड़े-बड़े साल के पेड़ काटेंगे, लादकर भरा ट्रक लेकर लौटेंगे। नट पेड़ की कटाई की आवाज़ सुन रहा है। लेकिन वह कर भी क्या सकता है इस समय? क्रमश: ट्रक आकर चेक-गेट के पास रुका। ऊपर से बांस की रुकावट उठाने के लिए हॉर्न बजाया। नट ने अनसुना कर दिया। अचानक दो-तीन कुली उतर आये ट्रक से। नट को घसीट लाये। चाबी मांगी। मगर नट ने चाबी नहीं दी। कहा, "रात में गेट खोलने की इजाज़त नहीं है। रेंजर बाबू ने मना कर रखा है, सवेरे आकर चक्कों की लीक देखेंगे—मेरी नौकरी गोल हो जायेगी। बिना 'पास' के मैं गेट नहीं खोल सकता।"

नट की कसकर पिटाई कर दी गयी। बेहोश कर गेट तोड़ ट्रक लेकर भाग निकले। तब रात के दो बज रहे थे। आस-पास कोई लोग-बाग नहीं। जंगल साँय-साँय कर रहा था।

सुबह डोंगी में बैठ भँवरा निकला, गाँव में डाक बाँटने के लिए। फ़ॉरेस्ट-रेंजर की डाक अधिक होती है। जाकर चेक-गेट की गुमटी की खिड़की में झाँका। देखा, नट बेहोश पड़ा है! बस, गों-गों कर रहा है! दोनों जबड़े ख़ून में सने हैं। मुंह लाल हो गया है। मक्खियां भिनभिना रही हैं।

किवाड़ पर धक्का मारा। नट न हिला न डुला। कुछ उठाया, कुछ घसीटा, फिर डोंगी पर लिटाया। ले चला गांव के स्वास्थ्य-केन्द्र की ओर—गाँव के बीच वाले टीले के पास। और फिर डॉक्टर बाबू के ज़िम्मे सौंपकर चल पड़ा चिट्ठी बाँटने के लिए।

कई घण्टों बाद नट को होश आया। डॉक्टर बाबू से सारी बातें सुनकर उसे कानों पर विश्वास नहीं हुआ। भँवरा का ऋण कैसे उतारूँ? पिछली बातें—झगड़ा-फसाद सब भूल गया।

कुछ दिन बाद की बात है। मोहनी साहू ने भँवर से कहा, "कहना, नटिया आया था। वह तो बस तेरे ही गुण गा रहा था। बोला—'भँवरा भाई ने मेरी जान बचा ली। जीवन में उसका ऋण कभी नहीं चुका सकूंगा!'..."

भँवरा का मन ख़ूब नरम हो गया। फिर भी कहीं भेंट हो जाने पर नटिया

से बात करने में उसे संकोच होता। नट भी दिल खोलकर उससे बातचीत नहीं कर पाता। दोनों एक-दूसरे की ओर देखकर अपने-अपने रास्ते चले जाते।

महीने दो महीने बाद नटिया ने सुना—साइकल वाला समेसर कह रहा है, "भँवरा ने तेरे लिए क्या कुछ नहीं किया। भगवान ने इतनी बड़ी विपद से बचा लिया! जाको रखे साइयाँ, बाल न बाँका होय!"

नट सब सुनता रहता। मगर भँवरा को बुलाकर कुछ कह नहीं पाता। भँवरा भी सब सुनता रहता, मगर नट को कुछ नहीं कह पाता। बस, आमने-सामने पड़ते तो दोनों के चेहरे पर जरा-सी मुस्कान खिल उठती।

ऐसे ही कुछ महीने बीत गये। उस दिन नटिया ने बस्ती में सुना—सुलोचना पेट से है। दो महीने बाद वह माँ बन जाएगी!

रेंजर बाबू ने उस दिन हिरन मारा था। नटिया को बुलाकर उसे दो किलो मांस दिया। पता नहीं, उसके सिर में क्या सनक चढ़ी, जाकर भँवरा के दरवाज़े हाज़िर! सुलोचना और भँवरा बरामदे में बैठे बतिया रहे थे। नटिया अनायास कह उठा—

"भँवरा भैया! सुलू बहन! ये मिरग-मांस तुम रखो। तरकारी बना लेना। मुझे रेंजर बाबू ने दिया है।"

भँवरा और सुलोचना दोनों के होठों पर हल्की-सी मुस्कान बिखर गयी—"सारा ही हमें क्यों दे रहे हो?"

नटिया ने ठहाका लगाया, "मेरे क्या काम का? मैं तो मुरारी बाबा के होटल का ग्राहक हूँ। मेरे लिए भला कौन पकायेगा?"

भँवरा ने कहा, "नटिया रे! तुम ऐसा करो···आज रात हमारे घर खाना खा लेना। न्यौता रहा।"

सुलोचना तो लाज में गड़ गई। एक बार नटिया के चेहरे की ओर देखकर मुंह नीचा कर लिया।

नटिया ने कहा, "ठीक है। बहिन के घर से न्यौता मिला है, कोई कैसे मना करेगा? मगर कहाँ, बहिन तो कुछ बोलती नहीं···"

सुलोचना तो लाज में सिमिट गयी। फिर थोड़ी हँसकर कह उठी—"हाँ-हाँ, ···तू आज हमारे घर खाना खायेगा नट भैया!"

●

जागीर

गुणुपुर करद राज्य था, लेकिन देशी रियासतों के मिलने के बाद मुगलबन्दी में आ गया। प्रजामण्डल के लोगों की खुशी की पारावार न था! राज्य पास के ज़िले में शामिल हो गया। मानचित्र ही बदल गया! बदल गयी सारी प्रजा के मन और भावना की रूपरेखा! उनका सपना सच हो गया। अब राजा रहें तो भी उनके हाथ में कोई शक्ति नहीं रहेगी। अब बेगार, भेंट, मुफ़्ती या हाँके में सैकड़ों लोगों को नहीं लगना होगा। सब स्वतन्त्र भारत के बासिंदे होंगे। अन्याय, अत्याचार और मन-मर्जी का शासन नहीं चलेगा। कितने लोग प्रजा-आन्दोलन में जेल गए, गोली खाई, फाँसी के फन्दे पर लटके! अँगरेज़ सरकार ने बार-बार फ़ौज भेजी··· लोगों पर अकथनीय अत्याचार किये! घर-बार लूटे! बाल-बच्चों पर सेना ने बलात्कार किया। इज्जत लूटी औरतों की!

फिर भी आन्दोलन दबा नहीं, वरन् दिनों-दिन अधिक सुलगता ही गया। इन सूखे हाड़ों में इतनी हिम्मत! इतनी अकड़ कहाँ छिपी रही थी आज तक?

आखिर अँगरेज़ सरकार को जाना पड़ा। कुछ ही दिन में राजे-रजवाड़े भी चले गये।

पहले रजवाड़ों के ज़माने में कई लोग—जो राजा के क़रीब होते थे—तरह-तरह से निष्कर जागीर पा जाते थे। पूजापण्डा से लेकर 'भीतर परिछा' (रनिवास में रानियों व बाँदियों की पहरेदारी करना कि बाहर का न कोई आ सके और वे भी बाहर जाकर किसी से न मिल सकें) तक। कीर्तनियों को, जिनका काम होता, जब किसी को महल में पकड़ ख़ास कोठरी में बन्द कर उसकी खिंचाई होती तो उनकी आर्त चीख-पुकार को रोकने के लिए कमरे के बाहर ज़ोर से मृदंग-करताल बजाकर हरिनाम का कीर्तन करना—कई-कई एकड़ निष्कर जागीर मिली हुई थी इसके लिए।

रजवाड़े समाप्त होने के बाद राज्य-सरकार की ओर से नयी व्यवस्था हुई है—फिर से बंदोबस्त होगा। नया खेतियान होगा। कौन कितनी जागीर पाता है, कर देता है या निष्कर, इसकी तहक़ीक़ात होगी। तब सरकार की रीत थी कि पुरानी प्रथा में ज्यादा अदल-बदल न की जाय। वरना लोगों में असन्तोष और बढ़ेगा।

इसके लिए नियुक्त स्वतन्त्र तहसीलदार एवं स्थानीय तहसीलदार की इजलास में काग़ज़ात, दलील, दस्तावेज़, पावती आदि की जाँच चल रही है। सैकड़ों जागीर भोग करने वाले लोग काग़ज़ात लेकर कचहरी में जमा होते। अपना-अपना दावा पेश करते। उसे साबित करने की कोशिश करते। कचहरी का सारा अहाता लोगों से भर जाता।

उस दिन ग्यारह बजे एक मँझोले क़द का कन्ध बारह कोस दूर से चलकर आया था। अफ़सर के आगे हाजिर हो गया। उसकी देह एकदम काली। लम्बा-चौड़ा आदमी। माथे पर लगाया है रुपये के आकार इतना बड़ा देवी के सिंदूर का टीका। गले में डाल रखी है खुली माला। माथे पर बड़े-बड़े बाल, पीछे गाँठ लगा रखी है। हाथ में उसके बड़ी-सी कटार है। वह भी माँ के सिंदूर में चमचमा रही है। उसे देखकर हट्टा-कट्टा जवान भी डर जायेगा। कचहरी के दरवाज़े पर खड़ा चौकी-दार सिपाही उसे रोकने जा रहा था। मगर उन लोगों को धकेल वह सीधा हाकिम के कमरे में घुस गया। उसे देखकर हाकिम, अमीन, अमला सब घबरा गये।

उसने हाकिम को सलाम किया। सिंदूर-पुती कटार भी उनके चरणों में रख दी। हाकिम उसकी ओर देख हक्के-बक्के रह गये। उस आदमी ने कहा, "हुजूर, मेरा नाम पाणू कंध है। करमोल परगने में दिशारी मौजा में मेरा घर है···उधर जहाँ पहाड़ के नीचे बिबलेई देवी का मन्दिर है, उसी के पास।"

हाकिम ने पूछा, "किधर आये हो? काम क्या है?"

पाणू कंध ने कटार दिखा दी, "हुजूर! तुम्हें एक बात कहने आया हूँ। मैं दस एकड़ निष्कर ज़मीन जागीर का भोग करता था।"

हाकिम ने पूछा, "कैसी जागीर?"

पाणू कंध ने गला साफ़ कर हाथ जोड़ कहा—"जी हुजूर! गलकटिया जागीर!"

हाकिम मुगलबंदी की तरफ़ के हैं। कुछ नहीं समझ सके। पाणू ने कहा "हुजूर! ऐसा काम था, हर वर्ष दशहरे के दिन बिबलेई देवी के आगे किसी आदमी की बलि देना।"

हाकिम आश्चर्य में भर कर जिस-तिस ओर देख रहे हैं। पाणू ने कहा, "हम दस पीढ़ी से यही काम करते आये हैं, हुजूर। इन राजा के बाप, बूढ़े राजा, उनके भी बाप ठाकुर राजा···सब हमें पुरस्कार देते रहे हैं। इन देवी की थापना चार सौ बरस पहले किसी राजा ने की थी।"

हाकिम ने पूछा—"कैसा पुरस्कार? किस के लिए?"

पाणू ने हाथ जोड़कर कहा, "हुजूर! आदमी की बलि दे कर, उसकी जीभ को गले से काट कर, राजा मणिमा को दिखाने पर वे धोती-जोड़ा, गमछा, कुछ रुपये बक्सीस में देते!"

उसके बाद पाणुआ चुप हो रहा। पता नहीं, क्या सोचने लगा! हाकिम ने सवाल दुहराया।

पाणुआ ने हाथ जोड़ कर कहा—

"मैं तुम्हें सच कहूँगा, साब! तुम धर्मावतार हो! मैं कुछ भी छुपाऊँगा नहीं तुम से! मैंने तीन की बलि दी है। पहले मेरे बापू यह काम करते थे। वे बाघ के पेट में चले गए, तीन साल पहले। तब से यह काम मैंने लिया। मैं मज़बूत, हट्टे-कट्टे छोकरों को लोभ दिखाकर 'हरिण कुरंग या कोई चिड़िया मार दूंगा', यह बहाना बना फुसलाकर माँ के पास ले आता। सिर काट देता। मरने के बाद जीभ को गले के पास से काटता और बाकी लाश घने जंगल में फेंक आता।"

हाकिम और समूची कचहरी अवाक्! किसी के मुंह में ज़बान नहीं। कुछ देर बाद हाकिम ने अन्य अफ़सरों के साथ कुछ सलाह की। पाणुआ से पूछा—

"अब क्या चाहते हो?"

पाणू ने कहा, "मैं यह निष्कर जागीर भोग करने का हक़दार अब नहीं हूँ। मैंने माँ का काम छोड़ दिया है। माँ की ज़मीन लेने का हक कहाँ? अब मैं लगान दूंगा इस ज़मीन का। निष्कर जागीर निकाल लें। पर लगान देकर खेती करूंगा।"

हाकिम-हुक्काम सब चुप, बुत बने बैठे रहे! किसी के मुंह में कोई भाषा न थी वहाँ।



साखी

"मैं जिनतान साहू, पिता स्वर्गीय शालिग्राम साहू, उम्र 35, साकिन अलीसा बज़ार, कटक-2; थाना-लालबाग, शपथपूर्वक कहता हूँ—जो कहूँगा सच कहूँगा, सच के सिवा कुछ नहीं कहूँगा।"

मुद्दाला पक्ष के वकील आकुली बाबू ने जिरह की—

"तुम क्या करते हो ?"

"जी, मेरी एक पान की दुकान है।"

"दुकान में क्या बेचते हो ?"

"पान के बीड़े। सिगरेट, पिक्का, दियासलाई, सुबल जर्दा, केशव पत्ती···।"

"और क्या बेचते हो ?"

"जी, नेहरू गुंडी (तंमाखूदार चूरा), गांधी-मार्का सुपारी, पान का मसाला, बिस्कुट, चॉकलेट, लक्स साबुन, कपड़े धोने का साबुन वग़ैरह···"

तभी मैजिस्ट्रेट साहब ने कौतूहल से पूछा—

"जिनतान का अर्थ क्या है ?"

"हुजूर ! मेरे पिता भी पनवाड़ी थे। उन दिनों 'जिनतान' नाम वाले एक लाल-लाल पान मसाले की गोली विलायत से जहाज़ में आती थी। एक छोटे चौकोर टिन के डब्बे में पचास गोलियाँ। वह डिब्बा भी कितना सुन्दर चित्रांकित होता ! देखते ही मन खुशी से भर जाता। दाम होते कुल तीन आने। खूब महक होती हुजूर ! एक गोली मुँह में डाल लो, दिनभर महकता रहेगा। गोरे साहब घोड़े पर चढ़कर हमारी दुकान पर पान का बीड़ा लेने आते। खुद कमिश्नर जेफ़रसन साहब···"

मैजिस्ट्रेट ने हाथ हिलाकर कहा—"बस करो !"

आकुली बाबू ने जिरह की—

"अच्छा, तुम कितने वर्ष से यह धन्धा कर रहे हो ?"

"जी, पाँचवीं में पढ़ने के दिनों से। आज पैंतालीस बरस हो गए। दाहिनी दोनों अँगुलियाँ चूने के कारण सड़ चुकी हैं।"

मजिस्ट्रेट को अँगुलियाँ दिखायीं।

"हुजूर ! पहले घण्टे-दो घण्टे दुकान में बैठता था। बापू ने पढ़ाई छुड़ा दी। बोले—अब दोनों वक़्त बैठो। तब से पान लगाता हूँ।"

"तुम इस मुक़दमे के आसामी बैजू सामल को जानते हो ?"

"जी हजूर !"

"कब से ?"

"कोई दो बरस से।"

"कैसे परिचय हुआ ?"

"वह मेरी दुकान पर बीच-बीच में आकर बैठा करता। पान खाता, बीड़ी-सिगरेट लगाता। कभी-कभी एक-दो बिस्कुट चबाता। घण्टे-दो घण्टे रुककर चला जाता।"

"घण्टा-दो घण्टा क्या करता ?"

"जी, पेण्ट की जेब में हाथ डाले सड़क के किनारे खड़ा रहता। कभी सीटी बजाता। कॉलेज की लड़कियाँ रिक्शा में जाती होतीं तो उन्हें देखा करता।"

मुद्दई पक्ष के सरकारी वकील ने हाकिम को साखी जमानबंदी लिखने में सहायता के लिए कहा—

"ही कीप्स ऑन लुकिंग एट द कॉलेज गर्ल्स व्हाइल दे पास बाई रिक्शाज़।"

मुद्दाला पक्ष के वकील आकुली बाबू ने आपत्ति की—

"योर ऑनर ! इर्रेलीवेण्ट !" (हजूर ! इस बात का मुक़दमे से कोई सम्बन्ध नहीं)

"हजूर, है। इससे आसामी की चारित्रिक दुर्बलता प्रकट होती है।" सरकारी वकील ने ज़ोर देकर कहा।

आकुली बाबू ने कहा, "कभी नहीं। यह तो उसके सूक्ष्म सौन्दर्य-बोध का प्रमाण है। हर उत्कलीय सौन्दर्यप्रिय है। यह कोई दूषणीय बात नहीं।"

हाकिम मुस्करा कर बोले, "आप लोग सौन्दर्यबोध की ओर जा रहे हैं। मूल घटना साइकल-चोरी के केस पर आइए।"

जिनतान को खूब मजा आता। उसकी ज़बानबन्दी का एक-एक शब्द इतना तर्क-वितर्क पैदा कर सकता है, कभी सोचा तक नहीं था। पहली बार कठघरे में खड़े होते समय जो दिल की दुर्बलता थी, अब धीरे-धीरे छँट गई। उसमें आत्म-विश्वास लौट रहा था।

आकुली ने जोड़ा—"बेकार की बातें छोड़ मेरे सवाल का उत्तर दो।"

"जी साब ! तो···उससे सुना है कि खाननगर में कहीं रहता है वह।"

"फिर उसे देखा कैसे ?"

"वह चढ़ कर आता। दुकान के पास बिजली के खम्भे से टिका कर पान-बीड़ी खाता।"

"फिर वह उसी की साइकल है, यह कैसे जाना ?"

"दो बरस से उसी पर चढ़कर आता रहा है। एक बार पूछा तो बोला कि महांगा गाँव के किसी से खरीदी है।"

"किससे ली, बता सकोगे ?"

"नहीं सर ! इतनी बातें मैं नहीं बता सकूंगा। वह एक गाहक है। उसकी अन्दरूनी बातें भला मैं क्या जानूं !"

आकुली बाबू ने पूछा—

"अच्छा, बैंजू आदमी कैसा है ?"

"खूब अच्छा आदमी है। मेरे सारे बाक़ी पैसे चुका देता। किसी से झगड़ा-झंझट नहीं। खूब मज़ेदार आदमी है। मेरी दुकान के आगे लेटे आवारा कुत्ते को बुलाकर कभी-कभी बिस्कुट भी खिलाता है। एक बार बीड़ी पिलाने भी जा रहा था…"

"धत्…ये बातें छोड़ो।" आकुली बाबू ने बीच में टोका। "मैं जो पूछता हूँ, उसका जवाब दो। अच्छा, बैजू क्या करता है ? बता सकोगे ?"

जिनतान ने सिर हिलाकर कहा, "नहीं सर ! हाँ, एकबार ज़रूर कहा था—स्टेडियम के पास साइकल-स्टैण्ड का ठेका लेने के बारे में। वह मिला या नहीं, पूछ नहीं सका। इतनी बातों से मुझे मतलब ही क्या था ! मैं भला, मेरे गाहक भले। मैं किसी की बातों में नहीं जाता…"

आकुली बाबू की जिरह पूरी हो गई। अब सरकारी वकील की बारी थी। तेज़ ऊंची आवाज़ में बोले—

"बैजू सामल तुम्हारी दुकान पर पान खाने आता ?"

"जी हाँ !"

"तो कुछ चोरी की चीज़ लाते देखा है ?"

"नहीं।"

"घड़ी, क़लम या साइकल…?"

"नहीं।"

"वह कैसे आता है ?"

"पैरों से।"

सरकारी वकील ने चिढ़कर कहा—

"उफ़् ! मैं क्या वह बात पूछता हूँ ? पैरों से नहीं आता तो क्या सिर से या हाथ से आता ! मैं पूछता हूँ—वह किस पर आता है ? रिक्शा, साइकल या कार ?"

"साइकल पर।"

"पहचान सकोगे वह साइकल ?" उन्होंने दूर किवाड़ के पास अँधेरे कोने में

टिकी एक साइकल दिखा दी।

जिनतान ने निडर हो कहा, "यही है बैजू की साइकल।"

"सच कहते हो?" सरकारी वकील ने पूछा।

"···हाँ, सर!"

"तुम एकदम झूठ बोल रहे हो।"

"नहीं सर!"

सरकारी वकील विनोद बाबू थके लग रहे थे। कुछ क्षण रुककर बोले—"बैजू क्या करता? कहाँ जाता है?"

"मुझे नहीं मालूम। फिर भी कभी-कभी बोलता—बारबाटी क़िले की ओर जा रहा हूँ।"

"क्यों जाता वहाँ?"

"वहाँ गढ़ की खाई के पास बैठने पर मन में भी फुर्ती आ जाती।"

आकुली बाबू ने आपत्ति की—"इसका मूल मुक़दमे से कोई सम्बन्ध नहीं। यह बिलकुल अप्रासंगिक है।"

विनोद बाबू—"नहीं सर, सम्बन्ध है। तभी तो पता चलेगा कि आसामी एक भेगाबांड है, लफंगा है। यों ही आवारगी में इधर-उधर फिरता रहता है। ऐसे लोग ही चोरी-चकारी करते हैं।"

आकुली बाबू—"नहीं सर, इससे तो उलटे यह पता चलता है कि आसामी शान्तिप्रिय है। प्राकृतिक दृश्यों में उसकी रुचि है। इसमें उसे आनन्द मिलता, बारबाटी क़िले में जाने से लगता है कि आसामी कलिंग के महान् ऐतिह्य का सम्मान करता है। ऐतिह्य-प्रीति हर खाँटी उत्कलीय का मूल चारित्रिक गुण है।"

सुनवाई इतने में मुल्तवी हो गई। हाकिम अपने ख़ास कमरे में चले गये। फिर तीन बजे शुरू होगी।

पहले मुद्दई पक्ष याने पुलिस की साखी की जबानबन्दी और जिरह पूरी हुई थी। जो दो कांस्टेबल साखी दे रहे थे, उनका कहना था—सिर्फ़ बैजू की ही साइकल जब्त की थी। यह चोरी की है, इस बात को किसी साक्षी प्रमाण से साबित नहीं कर सके। क्योंकि बैजू के विरुद्ध साखी देने में बस्ती के लोग डरते थे। हालाँकि कई लोगों ने भीतरी तौर पर कहा था—यह साइकल दो महीने पहले कहीं से चोरी कर लाया था, उसी पर चढ़ता है। पहले भी साइकल-चोरी में पकड़ा जा चुका है।

तीन बजे हाकिम इजलास में आये, फिर जिरह शुरू हुई। सरकारी वकील ने साखी से पूछा—

"अच्छा, कह सकते हो—बैजू सिनेमा जाता है?"

"हाँ, सर! अच्छी-अच्छी चीज आने पर जाता है।" फिर रुककर बोला—

"मगर सर ! सिनेमा के टिकट ब्लैक नहीं करता !"

सब हँस पड़े कोर्टरूम में।

"तुम्हें कैसे पता कि वह सिनेमा जाता है ?"

"कभी-कभी सिनेमा की बातें करता है।"

"वह कैसे दृश्य पसन्द करता है ? चोरी, डकैती, मारधाड़···?"

"नहीं सर ?"

"तो फिर ?"

"मुहब्बत-प्यार···"

"कौन-सा हीरो उसकी पसन्द का है ?"

"बता सकते हो, क्यों ?"

"कहता, धरमिन्दर ही मुहब्बत करना जानता है। वही है सुपर हीरो !"

आकुली बाबू ने आपत्ति की—

"योर ऑनर ! इन बातों का मुक़दमे से कोई ताल्लुक़ नहीं !"

विनोद बाबू—"नहीं योर ऑनर ! इससे तो आसामी की हीरोवरशिप का ही पता चलता है। बैंजू आला दरजे का हीरोवरशिप है।"

ये जवाब-सवाल जिनतान को खूब अच्छे लगते। उसकी बात-बात का गूढ़ अर्थ निकालने पर उसकी छाती फूल कर कुप्पा हो जाती। वह भविष्य में अच्छा साखी बन सकेगा। पक्का विश्वास हो गया।

हाकिम ने मुस्कराकर पूछा, "तो लिखता हूँ !"

दोनों वकीलों ने एक साथ कहा, "यस, यस ! योर ऑनर !"

उस दिन की सुनवाई वहीं पूरी हो गई।

× × ×

साखी वाला धन्धा जिनतान को बुरा न लगा। इसमें कोई झमेला नहीं। बस आये, कठघरे में खड़े हुए, सत्यपाठ से पहले वकील की बतायी दो-चार बातें बता दे। काम फ़तह। है मज़ेदार !

इससे पहले नकुली बाबू वकील की बात में पड़कर वह ज़मानत लेता था। कटक में अलीसा बज़ार में एक पैतृक फूस का घर है। यही तो ज़मानत लेने वाले की सबसे बड़ी योग्यता है। कितने लोगों की अपनी जगह-ज़मीन हैं कटक में ? चाहे दस गज ही हो। उसकी भी तो एक हस्ती है। वह कटक के बाशिंदे के रूप में गर्व करेगा। अब कटक में जो मकान, घर-बार सिर ऊँचा किये हैं, ज़्यादातर के मालिक हैं बाहर के। कोई उसकी तरह पक्का कटकी नहीं। उसके खानदानी मुग़ल-मराठों के ज़माने से कटक के बाशिंदे हैं। इनकी तरह कहीं से उड़कर रौब गांठनेवाले नहीं। मेरे मामा भी कटकी हैं। भूलामियाँ बज़ार में। गली से गली सटी है। कोई दूर नहीं। जिनतान के बापू कहा करते—खुद कमिश्नर

जेफ़रसन सा'ब ने एक दिन उसकी दुकान के आगे घोड़ागाड़ी रखकर कोचवान के हाथ पान का बीड़ा मँगवा कर खाया था। पान चबाते-चबाते सा'ब ने कहा—फॅंटास्टिक ! तब उसकी दुकान चांदनी चौक में थी—कमिश्नर की कोठी के पास। मगर वहाँ से कुछ वर्ष हुए, बस-स्टैण्ड उठ जाने के बाद केबिन उठाने का अभियान चला। अपनी केबिन को उठाकर बैलगाड़ी में लादकर सामान-सहित कटक-चण्डी चौराहे के पास ही ले आया। महिला कॉलेज पास ही है। शुरू-शुरू में अच्छी बिक्री होती रही। काफी लड़के-लड़कियाँ दिनभर भीड़ लगाये रहते। बीड़ी, सिगरेट, पान खाते। घण्टों खड़े रहते। अब लेकिन, पुलिस खड़ी होने लगी है; किसी को ज्यादा देर तक खड़े नहीं रहने देती। फिर साल-छह महीने में नयी केबिन आ जाती—वहाँ कई केबिन हो गई हैं। बजार मंदा हो गया। फिर लम्बी छुट्टियाँ। गरमियों की छुट्टी, दशहरे की छुट्टी, बड़े दिन की छुट्टियाँ···ऐसे में आदमी क्या करे ? इतनी छुट्टियों में पढ़ाई कैसे होगी ?

घर पर पाँच प्राणी ! परिवार का पेट भरना है। बेटी मालती छठी में गई है। उसे किताबें, कलम, फ्राक चाहिए। छोटे बेटे के पैरों में चप्पल नहीं। बच्चों की किताबों के दाम एक-एक के सात-आठ रुपये ! स्त्री के पैर भारी होते ही जा रहे हैं। खुद भी साल में बारह महीने बीमार रहने लगा। चीनी की बीमारी लग गई है। ऐसे में आदमी गुज़ारा कैसे करे ? नकुली बाबू वकील की बात मान वह दस से पाँच बजे तक कचहरी जाने लगा। चोरों, जेबकतरों, नक़ली डॉक्टर, ठग, साधु वगैरह को ज़मानत पर लाने लगा। नकुली बाबू कह देते—"जा, ले ले ज़मानत।" एक की ज़मानत लेने पर चालीस-पचास की आमदनी हो जाती। इसमें नकुली बाबू दस-बारह ले जाते। एक बार एक रिक्शे वाले की ज़मानत ली। दो महीने से जेल में था, कोई ज़मानत लेने वाला नहीं मिला। किसी दूसरे के रिक्शे से टायर उतार अपने में लगाते समय पकड़ा गया था। नकुली बाबू बोले—"जा, ज़मानत ले ले। साठ रुपये मिल जायेंगे।" रिक्शेवाला साठ रुपये देकर छूट आया। मगर फिर उसके दर्शन नहीं। अपने मुलक श्रीकाकुलम् चला गया। दो-दो तारीखें पड़ीं—आसामी फ़रार ! आखिर जिनतान का घर-बार नीलाम होकर ज़मानत के रुपये वसूले जाते। मगर नकुली बाबू ने थाने में हुलिया दिया था। श्रीकाकुलम् पुलिस ने तेड़ापल्लीगुडम् जाकर उसे पकड़ कटक में हाज़िर कर दिया। जिनतान की जान बची। अब ज़मानत का धन्धा भी छोड़ दिया।

एक दिन आकुली बाबू ने आकर कहा, "क्यों जिनतान, क्या हाल हैं ? साखी दोगे ? हर तारीख पर बीस-पच्चीस मिल जायेंगे।"

घर पर छप्पर करने के लिए जिनतान को सौ-सवा सौ की सख़्त ज़रूरत थी। वह आकुली बाबू की बात मान गया। कोर्ट गया। बहुत नया-नया लगा। इस कोर्ट के मैजिस्ट्रेट सा'ब का तबादला हो गया है। बरगद के नीचे दो शरबत की

दुकानें लग गई हैं। दूर काठजोड़ी नदी चमचमाती दिख रही है। पत्थर के तट-बन्ध के नीचे के घने पेड़ में नयी-नयी कोंपलें निकल आयी हैं। चिड़ियाँ वैसे ही किचिर-मिचिर कर रही हैं। एक-दो गायें फिर रही हैं चाय की दुकान के आस-पास। जिनतान उदास-उदास आँखों से चारों ओर देखता रहा।

रोज़ दस से पाँच बजे तक कचहरी में कम झंझट नहीं। साइकल थी तो एक बात थी, दो महीने हुए वह भी चोरी हो गई। बड़े पोस्ट ऑफ़िस के आगे रखकर कार्ड लाने गया था। लौटकर आया तब तक चंपत! थाने में इत्तला दी गई। थाना-बाबू ने नम्बर माँगे। मगर नम्बर-फम्बर कुछ नहीं रखे थे। बस, इतना लिखवाकर आ गया—"मेरी पुरानी हीरो साइकल जी. पी. ओ. के सामने चोरी चली गई है।" इससे कुछ नहीं हुआ। होता भी क्या? कटक और उसके आस-पास रोज सैकड़ों साइकलें चोरी जाती हैं, सबकी कौन कितनी खबर रखेगा? थाने में रिपोर्ट की तो वह टेबुल पर ही दब गई। फिर कहीं रद्दी की टोकरी में चली गयी। अब अखबारों में पुलिस के विरोध में हज़ार बातें लिखी गईं। अचानक तत्पर हो उठी है पुलिस। चारों ओर दौड़-धूप चली। कुछ दिन बाद फिर ठण्डी पड़ जायेगी।

आज आख़िरी तारीख है। वादी-प्रतिवादी वकील ने सवाल किये। सरकारी वकील विनोद बाबू ने बड़ी-बड़ी किताबें दिखाकर कहा—"योर आनर! आसामी दुश्चरित्र है, लफंगा है। पहले भी साइकल की चोरी में एक-दो बार गिरफ़्तार हो चुका है, प्रमाण न मिलने पर खिसक गया। अब की बार कड़ी सज़ा दी जाये। भारतीय पेनल कोड की धारा 379 का मूल उद्देश्य है—देश से चोरीवृत्ति के मूल कारण यानी लफंगापन, अपहरण आदि का मूलोच्छेद करना।"

मुद्दाला के वकील आकुली बाबू ने और भी बड़ी-बड़ी किताबें टेबल पर रख-कर, टेबल पीट-पीटकर कहा, "योर आनर, आसामी निर्दोष है। वह एक सौन्दर्य-प्रिय, विदग्ध युवक है। देश के ऐतिह्य के प्रति उसमें काफी आदर है। वह उच्च कोटि का हीरोवरशिपर है। पुलिस असली दोषी न पकड़, निर्दोष को व्यर्थ हैरान कर रही है—लज्जा की बात है। कुछ सफ़ेदपोश लोग इसके पीछे पड़े हैं! पिछले दो वर्ष से काम में लायी जा रही साइकल को पुलिस कुछ दिन पहले चोरी हुई साइकल बता रही है! यह सब असम्बद्ध और बेबुनियाद अभियोग है। पुलिस की ओर से लगाया गया कोई चार्ज साखी से प्रमाणित नहीं हुआ। एक भी साखी ने बैंजू सामल द्वारा चोरी की बात नहीं कही। दूसरी ओर मुद्दाला पक्ष के साखी ने बयान दिया है कि यह साइकल बैंजू की है, सिर्फ़ बैंजू की। पिछले दो वर्ष से वह इसे काम में लेता आया है, अतः बैंजू को निर्दोष घोषित कर दिया जाय। बैंजू को उसकी साइकल वापस दी जाय।"

हाकिम ने दोनों पक्षों के सवाल—जवाब सुनकर राय दी :

"बैंजू सामल निर्दोष है। पुलिस अभियोग प्रमाणित करने में उपयुक्त साखी नहीं दे सकी। अतः बैंजू को बरी किया जाता है। मुक़दमा ख़ारिज किया गया। बैंजू को उसकी साइकल लौटा दी जाय।"

फ़ैसला सुन कर बैंजू, आकुली बाबू, जिनतान खुशी-खुशी बाहर आ गये। आकुली एवं जिनतान को बरगद के नीचे इन्तज़ार करने को कहकर बैंजू कोर्ट से साइकल लाने चला गया। बीस-पच्चीस मिनट बाद साइकल लेकर आ गया। पचास रुपये आकुली बाबू के हाथ पर रखे, जिनतान को भी तीस दिये। दोनों को धन्यवाद देकर चल पड़ा।

जिनतान ने साइकल और बैंजू को क़रीब से देखा। अब तक वह दूर से ही देखता रहा था। पहचानने में देर न लगी, 'हीरो' तो उसकी अपनी साइकल है! दो महीने पहले जी. पी. ओ. के सामने चोरी हुई थी। तो बैंजू ने ही चोरी की थी···!

साइकल को सीट पर हाथ रख वह चिल्लाया—"अरे! यह तो मेरी साइकल है!"

बैंजू हाथ हटाकर, साइकल पर चढ़कर, गर्व से रूमाल हिलाता जा रहा था।

आकुली बाबू वहीं बरगद के नीचे खड़े-खड़े मुसका रहे थे।

•

रिक्शा वाला

ई. आई. आर. के टाइम-टेवल के मुताबिक़ देहरादून ऐक्सप्रेस को भोर साढ़े छह वजे हावड़ा स्टेशन पहुँचने की बात थी। मगर उस दिन गाड़ी पहुँची सैंतालीस मिनट देर से। रात भर हम तीसरे दर्जे के डिब्बे में बरखा के छींटों से भीगते रहे। हमारी इस हालत के लिए पंचांग वालों की अशुभ लग्न उतनी जिम्मेदार नहीं, जितनी हमारे छोटे-से डिब्बे की टूटी खिड़की थी। रात भर अपनी जोड़-तोड़ करते हुए इंजीनियरी लगायी। सूटकेस लेकर जब गाड़ी से उतरे, तब तक हमारी दशा इतनी करुण हो चुकी थी कि अपने चारों ओर वृत्ताकार में खड़ी घोड़ा-गाड़ियों का व्यूहभेदन करने में भी हम समर्थ नहीं हो सके। लाचार हालत में एक फिटन के साथ मोलभाव किया, तभी मेरी आँखों में वे दो असहाय और बुझी-बुझी-सी आँखें पड़ गईं। मैं उन गहरी आँखों वाले की ओर देख ही रहा था कि उसने जिज्ञासा के से स्वर में पूछा, "बाबू, रिक्शा ?"

मैं उसे कोई उत्तर देता, उसके पहले ही आकर उसने हाथ से सूटकेस लेकर रिक्शे में लाद लिया। कोई चारा न था। उसके पीछे हो लिया।

कलकत्ते में गाड़ी-घोड़ों की बहुतायतवाले रास्ते पर रिक्शे पर जाना खतरे से खाली नहीं। फिर उस रिक्शे की हालत, रिक्शेवाले की भाव-भंगिमा देख मैं उस पर भरोसा कर ही न सका।

रिक्शे की हालत ऐसी कि जरा-सी चोट लगी कि वह टूट जायेगा। रिक्शा-वाला भी वैसा ही। उसके कमजोर पाँव उसकी दुबली काया का बोझ सम्हालने में लाचार दिख रहे थे। उसकी आँखें ख़ूब नींद के कारण फूली-फूली दिख रही थीं। लगता था जैसे सुबह मुँह नहीं धोया। भिनभिनाती ठर्रे की गन्ध आ रही थी, उस से किसी को भी उबकाई आ जाये। उसके गन्दे दाँत ऐसे भद्दे दिख रहे थे कि उस से बात करने को भी जी नहीं कर रहा था।

अपना सूटकेस उतार मैं दूसरे रिक्शे में रखने जा रहा था कि उसने दृढ़ता से कलाई थामकर मुझे रोका। उसकी खीझ से बचने के लिए मैंने धमकाने की कोशिश की तो उसने और भी ऊँचे स्वर में जवाब दिया। किसी तरह सूटकेस उठाने नहीं दिया। उसकी ज़िद व ज़ोर-ज़बरदस्ती का जवाब देने पास के पहरे वाले की मदद ले सकता था मैं। मगर कल रात का दुर्योग, भोर का धुंआँ और कोयले के

चूरे में मिली कलकत्ती हवा का प्रभाव मेरे मन पर एक और ही प्रतिक्रिया पैदा कर रहा था।

मैं कुछ विरोध किये बिना चुपचाप जाकर बैठ गया। झिड़क कर मैंने कहा, "चलाओ!"

गंगा के चारों ओर जूट-मिलों का धुंआ आकाश को मैला कर रहा है। बे-शुमार जहाजों का भोंपू बीच-बीच में सुनाई पड़ जाता है। हावड़ा पुल पर गमछा-कुर्ता-लुंगी पहने सैकड़ों हिंदू-मुसलमान कुली बीड़ी लगाये अपने-अपने काम पर जा रहे हैं। बीच-बीच में बड़ी बसों के बोझ से समूचा पुल दुलक जाता है। क़तार की क़तार टैक्सियां, मोटर और घोड़ागाड़ियां। बीच में यह रिक्शा कब खो गया, किसी को खयाल ही न रहा उसका। पुल पार करते ही लगा, रिक्शेवाला प्रकृतिस्थ हो रहा है। नशेबाज का भाव मिट कर बदले में सप्रतिभ सामाजिक भंगिमा खिल उठी। उसने मेरे साथ गप्प जमाना शुरू कर दिया।

उसकी बातें कुछेक शिकायतों के सिवा कुछ न थीं। एक ताज़ा गप्प सुनने के लोभ में कोई उस बोझिल कथावाचक का श्रोता बनेगा तो वह निराश ही होगा। वैसा कोई श्रोता बनने की उच्च अभिलाषा मेरे मन में न थी। बस, अनमना-सा बीच में हाँ-हूँ करता अपनी अनवधानता का प्रमाण दे रहा था।

पहले तो शुरू की—किराये की बात। छह आने से एक पैसा भी किराया कम नहीं लेता। इस तरह मुझे इशारा कर रहा था कि इतना किराया देने को तो मैं बाध्य हूँ।

फिर उसने कहना शुरू किया—इस धन्धे में एक पैसा भी मुनाफ़ा नहीं होता। दिनभर में रुपये-डेढ़ रुपये की मजूरी हो जाती है, मगर मालिक इसमें से बारह आने रिक्शे बाबत काट लेता है। दिनभर की मजूरी अठन्नी भी हो जाती है, नहीं भी।

अब आयी परिवार की बात। बाल-बच्चे खूब हैं। इस थोड़ी-सी मजूरी में उनका पेट भरना मुश्किल है। स्त्री को, बोला—यक्ष्मा है। अस्पताल छोड़ दूं तो घर पर खाना-पकाना कौन करेगा? बच्चों की खबर कौन रखेगा? फिर इलाज में कोई कमी नहीं। तीन रुपये खर्च कर एक ताबीज ले आया है। स्त्री के जीवन की दुनिया में किसी को चिन्ता नहीं।

× × ×

इसी तरह गप्पें मारता रहा। रास्तों पर खूब फिसलन है। सुबह सब रास्तों पर शायद नलके खोल दिए गए थे। अभी तक पानी सूखा नहीं। उस फिसलन-भरे रास्ते पर घोड़े की लीद और आदमी के पांवों की धूल मिलकर, ऐसा चीकट बन रहा था कि पग-पग पर फिसलने का डर होता है। वैसे मैं खूब डर रहा था—कहीं सुबह-ही-सुबह हमारा रिक्शे-सहित किसी बड़ी बस-तले कचूमर न निकल जाय!

कुछ देर बाद देखा तो—स्ट्रैण्ड रोड के पास बड़े बाज़ार की ओर जो ट्राम लाइन मुड़ती है—उधर से किसी एंग्लोइण्डियन को लिये एक टैक्सी तेज़ी से आ पहुंची। सड़क पर पड़े पानी को इतने ज़ोर से छिटक कर रहीम (इस बीच रिक्शे-वाले का यह नाम पता चल गया था) की आँखों में आ लगा। कुछ क्षण को उसे एकदम अन्धा कर दिया। एक हाथ में गाड़ी को थामा, दूसरे से आँखें पोंछीं। मगर गति ऐसी थी कि रिक्शा हिल उठा और ट्राम लाइन से ठोकर लग गई। रहीम ने अपनी गाड़ी और आरोही को बचाने की पूरी कोशिश की, मगर कोई फ़ायदा नहीं हुआ। वह फ़ुटपाथ पर धड़ाम से गिर पड़ा। तक़दीर से वह रिक्शा और मैं किसी तरह बच गये।

रहीम को गिरता देख सड़क के लोग हंस पड़े। कुछ दुकानदार उठ आये। मुखिया की तरह मुझे सलाह देने लगे, "भाड़ा मत देना! दूसरी गाड़ी कर लो!" उपदेश देकर चले गए मुझे। रहीम बेचारा वैसे ही फ़ुटपाथ पर कीचड़ में सना पड़ा था। मुंह से एक लौंदा थूक फेंका। शायद दांतों में उसकी जीभ कट गई थी। थूक लाल दिख रहा था। रास्ते पर सिपाही टहल रहा था। दौड़ आया वह। रिक्शा का नम्बर नोट कर लिया। थाने में चालान करने की धमकी दे डाली। रहीम की तो बुद्धि काठ हो गई थी—चोट का दर्द वह भूले हुए था। सिपाहीजी के हाथ-पांव पकड़े, दस्तूरी दी, तब जाकर उनके हाथ से छूटा। फिर से गाड़ी खींचने आया—लेकिन उसकी गाड़ी में जाने का साहस मुझ में बिलकुल नहीं रह गया था। फिर बीच सड़क यों हास्यास्पद होकर मन इतना खट्टा हो गया था कि सारा दोष उसी पर लादने लगा था। जी भर मैं उसे कोसने लगा। लेकिन उसने ज़बान नहीं खोली। किसी अपराधी की तरह सब-कुछ सह गया। मुझे बार-बार आश्वासन देते हुए कहने लगा—"ऐसी दुर्घटना कभी नहीं हुई। आज क़सूर हो गया! जीवन में ऐसा इसी वक़्त हुआ, वरना पहले कभी नहीं···। आगे भी कभी ऐसा नहीं होगा!"

मगर मैं भी ज़िद्दी था। आदमी जीवन तो पहले सहेज कर रखे! रहीम ने बार-बार सलाम किया, मिन्नतें करने लगा। कहने का मतलब था—पहले ही बाबू को···यों छोड़ना नहीं चाहेगा।

उसकी मिन्नत में मैं सब भूल गया। दुबारा राज़ी हो गया। होशियारी से गाड़ी चलाने का हुक्म दिया। सिगरेट जलाकर गाड़ी में बैठ गया फिर एक बार।

कुछ दूर जाने के बाद रहीम ने कहा, "दो वर्ष पहले भी एक ऐसी दुर्घटना हो गई। तब बड़े बज़ार मोड़ के पास ज़ोर से मोड़ने जा रहा था कि गाड़ी की धुरी ही टूट गयी। अपनी गाड़ी के दाम के लिए मालिक ने सौ रुपये की नालिश कर दी। गाड़ी के मालिक ने जूता खोल कर मेरी पिटाई कर डाली। नालिश के चक्कर से बचने के लिए मैंने औरत के गहने बेच डाले। मालिक को कुछ रुपये दिये,

बाक़ी महीने की महीने क़िस्त कर दी। एक कागज़ पर अंगूठे का निशान लगाकर दे दिया।"

आज तक उस पिछले रिक्शे के पैसे चुकता नहीं हुए। इसके बाद उसने स्वीकार किया कि कल रात से कुछ नहीं खाया है, इसी कारण ऐसा हुआ। कल रात जो मजूरी मिली, सारी ताड़ीवाले के यहाँ उड़ गई। हाथ में एक पैसा भी न था। औरत से गाली खाने के डर से घर गया नहीं, और न रात को खाना खाया, भूखा-प्यासा स्टेशन पर पड़ा रहा। कुल मिलाकर वह बताना चाहता था कि वह पक्का रिक्शेवाला है। इन सब आनुषंगिक दुर्योगों की दुहाई देकर अपनी ग़लती छुपाना चाहता था।

उसकी बातें सुनकर मुझे हँसी आ गयी। जो आदमी दस मिनट पहले कह रहा था—ऐसी दुर्घटना कभी नहीं हुई, पहली बार ऐसा हुआ है, उसके मुँह से यह सुन मुझे वह बड़ा धृष्ट लगा। धमकाया मैंने—ज़ोर से गाड़ी चलाओ! मेरा पारा ऊंचा देख, वह बुद्धू की तरह हें-हें कर हँसता गाड़ी खींचने लगा।

असल में मुझे खुश करने के लिए तेज़ी से दौड़ने लगा···उसकी पीठ पर हाड़ अजीब ढंग से उठते-गिरते रहे।

कुछ ही दूर चलकर वह सँभाल न पाया क़दम। एक भैंसा-गाड़ी से टकरा गया। नतीजा यह निकला कि भैंसागाड़ीवाले ने उसकी घण्टी छीन ली। मुझे भी इतना ग़ुस्सा चढ़ा कि उसे पुलिस में दे दूं। अब की दोष सारा भैंसागाड़ी पर थोप दिया—खुद को निर्दोष प्रमाणित करने लगा! किसी तरह नहीं माना कि स्वयं उसके कारण धक्का हुआ है, उसकी बेलज्ज झूठ सुनकर मेरा रोम-रोम जल उठा।

तभी पीछे से एक और खाली रिक्शा आ पहुँचा। यह रहीम का दोस्त था—बीनू। रहीम की हालत देख हो-हो हँस पड़ा। "—स्साले, बेईमान! ठीक हुआ!" फिर मुझे ऐसी विपद में डालने पर रहीम को बेइज़्ज़त करने लगा, ताकि मेरी सहानुभूति उधर हो। मैं रहीम पर इतना खफ़ा था कि होश-हवास ही न रहा, तुरन्त उस रिक्शे से उतर गया और उसे रास्ता दे दिया। बीनू मुझे बिठाकर गाड़ी खींचने जा रहा था कि बीनू पर पीछे से हमला कर दिया। दोनों एक-दूसरे को पूरे दम से गाली-गलौज में चोट करने लगे। बीनू के तो दो-एक धौल ही रहीम के लिए काफ़ी थे, इसलिए अब बीनू को छोड़ वह मुझ पर आक्रमण करने आया। अब तक का सारा पैसा न दिया तो मेरा सामान न छोड़ेगा। ऐसे बुरे व्यवहार के लिए गुस्से में लाल होकर मैंने कहा—एक पैसा भी भाड़े-वाड़े का नहीं मिलेगा। बीनू भी उसे पीटते-पीटते ले गया और गला पकड़ एक बिजली के खंभे से धकिया दिया। अब उसमें और झगड़ा करने का साहस न रहा। चुपचाप अपने रिक्शे को पकड़ मुझे और बीनू को कोसने लगा।

रहीम को मात देकर अपने विजय-गौरव में फूला वीनू आ रहा था। सलाम कर खड़ा हुआ। उसके भावों से लगा, जैसे इसी वीरता के लिए मुझसे कोई बख्शीश चाहता है। "मकान पर चलो, देंगे।"

वह रिक्शा ले चला। मकान पर पहुँचा। घर के लोगों के स्वागत-अभ्यर्थना में मैं रहीम की बात भूल गया।

मैं बनारस से उस दिन दून-ऐक्सप्रेस में लौट रहा हूँ, इसका तार पहले ही दे दिया था। वे सब उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहे थे, किसी प्रोषित-पतिका की तरह मेरे पहुँचते ही सब एकसाथ जय-जयकार कर उठे। मुझे लगा—भारत के वाइस-राय को इण्डिया गेट पहुँचने पर ऐसा सत्कार मिलता होगा या नहीं! इतना ही नहीं, मेरे लिए उन्होंने डेढ़ रुपये खरच कर मेट्रो हाउस में बालकनी की टिकट भी पहले ही से खरीद रखी थी। 'लव इन दी रान' में जॉन क्राफ़ोर्ड को पर्दे पर देखने का कार्यक्रम उस साँझ के लिए तुरत बन गया था।

नौ बजे वाला शो देख हम सब लौट रहे थे। गोल्ड फ़्लैक के धुएँ के छल्ले छोड़ते जा रहे थे। एस्प्लेनेड की चकाचौंध में सबकुछ भूल गये थे—रोज़मर्रा का दुख-दर्द सब-कुछ। हमें लग रहा था—साँझ का समय एस्प्लेनेड में आदमी के लिए नहीं है, न आदमी का बनाया हुआ है।

धरमतल्ला पार कर बहूबज़ार की एक सँकरी गली में मुड़े। हमारा मकान कुछ दूर था। अचानक देखा, एक चारमंज़िला मकान के आगे खड़ा रहीम 'बाबू! बाबू!' की आवाज़ लगा रहा है। उसकी करुण पुकार से सारी गली भर गई है।

इतनी रात गए कोई करुण चीख लगा रहा है—हम सब करुणा से भर गये। चारों ओर जाकर खड़े हो गए। मैं रहीम को पहचान गया। ताज्जुब है रहीम मुझे बिल्कुल नहीं पहचान सका! सुबह वाले अपने आरोही की बात उसकी घनी व्यस्तता में कहीं लीन हो गई थी। इन सब के आगे वह अपना दुखड़ा कहने लगा।

उसकी लम्बी नालिश की फरद में जो घटना मिली, वह यों थी: रहीम ने दिन भर मेहनत कर बारह आने कमाये। साँझ को घर लौट रहा था। कल से घर नहीं गया था। बाल-बच्चे भूख के मारे छटपटा रहे होंगे—यही सोच तेज़ी से घर की ओर लौट रहा था। तभी एक बाबू चवन्नी भाड़ा तय कर गाड़ी में बैठे। इस ऊँची कोठी के आगे उतरकर बोले—किराये के खुले पैसे नहीं हैं, रुपया है। नौकर के हाथ भेज रहा हूँ—यह कह बारह आने पैसे लेकर चले गये उसके। भला इतने बड़े घर के आदमी, अविश्वास कैसे करता वह! दिन-भर की कमाई बढ़ा दी उनके हाथ में।

बस, अन्दर गए सो गए! तीन घण्टे से आवाज़ लगा रहा है—कोई नहीं सुनता। न बाबू और न नौकर—किसी का अता-पता नहीं।

रहीम पर हम सब को दया आ गई। इसे ठगा है, ठग को सजा देने का सबने

निश्चय कर लिया। घर के फाटक पर दस्तक दी। देर तक धक्के लगाये, तब दरवान आया। बाबू को बुलाने के लिए कहा गया, तो वह बोला—"बाबू सो गए हैं। रात में वे नहीं उठेंगे।" हमने रहीम के पैसे माँगे, उसने बेरोक-टोक सुना दिया—"यहाँ कोई बाबू-फाबू रिक्शे में नहीं आये !"

हम रहीम की बात की सच्चाई जानने के लिए उससे जिरह करने लगे। मगर उसकी रुआँसी आँखें और करुण बोली, उसकी बात का सबसे बड़ा सबूत थीं। सबने मदद का आश्वासन दिया। बग़ल में जाकर थाने में रपट लिखवा दी।

मगर पुलिस इंस्पेक्टर उस घर का नम्बर सुनते ही, "भागो-भागो यहाँ से !" कह उठे। "रहीम तो झूठा है ! नशेबाज़ है, अरे, उस घर के बाबू बड़े ज़मींदार हैं ! उनकी अपनी दो-दो ब्यूक गाड़ी हैं !"

रहीम कितना रोया, सौगन्द खायी—सब बेकार ! हम भी थाना बाबू को कोसते-कोसते लौट आये। रहीम ने कहा, "मेरा भाड़ा न दिया, न सही, पर मेरे मजूरी के बारह आने ही लौटा देते ! वह फफक-फफक रो उठा। मेरे सभी संगी उस ज़मींदार को कोसते हुए बोल उठे—"स्साला ठग···धोखेबाज कहीं का···!"

थोड़ा पीछे हटकर मैंने जेब से एक रुपया निकाला और उसे रहीम के हाथ पर रख दिया।

वह कुछ न समझ पाया। जिज्ञासु की तरह मेरी ओर देखने लगा। बात को सरल करने के लिए मैंने उससे कहा, "सुबह मैं आया था तेरी गाड़ी में। दो बार धक्का लगा था अतः गुस्से में किराया नहीं दिया था। लो, उसी किराये के पैसे दे रहा हूँ।"

मेरे साथ वाले सभी हो-होकर ठहाका लगाने लगे। "—तो छुप-छुपे दान चल रहा है !"

रहीम ने मेरी मेहरबानी के लिए सलाम कर रिक्शा उठाया और खींचते हुए दूसरी राह चलता बना।

अँधेरी रात। उसका रिक्शा तो नहीं दिख रहा था, मगर घण्टी की टन्-टन् देर तक हम सभी सुनते रहे।

●

नि:संग प्रतिमा

विमल बाबू काफ़ी थकावट महसूस कर रहे हैं। 'ना, और नहीं। अकेला क्या कर सकता हूं? मैं भला अकेला इस स्रोत का मुंह बन्द कर सकता हूँ? शायद इस बाढ़ में किसी नि:संग प्रतिमा की तरह कहीं बह न जाऊँ···अथवा किसी पहाड़ की चट्टान से टकरा कर चूर-चूर न हो जाऊँ···कोई अता-पता भी न रहेगा!'

गन्दे पानी का प्रचण्ड स्रोत बहता चला आ रहा है। खेत-खलिहान, पेड़-पौधे, जंगल-पहाड़, ऊँची-नीची सारी जगह डुबोता आ रहा है। सारा देश ही उसमें डूब गया। उद्धार का कोई रास्ता नहीं, बचाने का कोई उपाय नहीं।

चारों ओर गन्दगी, मैला—सड़ांध ही सड़ांध! कोई किसी का मुंह नहीं देखता। सब चले जा रहे हैं अपनी-अपनी दिशा में बेदम हुए—पीछे की ओर मुड़ने की फ़ुरसत नहीं।

ऐसी हालत पहले तो न थी! उन्हें याद आती है चालीस बरस पहले की बात। कितना शान्त, सरल और सहज न था जीवन उस समय!

युनिवर्सिटी से डिग्री लेने के बाद बड़ी सरकारी नौकरी में चले आये। बचपन से थे सरल, सच्चे और आत्म-सचेतन। मगर नौकरी में मन नहीं लगा। नौकरी से इस्तीफ़ा देकर बन गए स्कूल-मास्टर। वहाँ से भी इस्तीफ़ा देकर कूद पड़े देश के गण-आन्दोलन में। शुरू से ही, बिना किसी खास चेष्टा के, वे बन गये अपने इलाक़े के लाखों लोगों के चहेते नेता! मानो नेतागिरी उनकी प्रतीक्षा में बैठी थी। बार-बार जाना पड़ा जेल। मार खाई, सर्वस्व गँवा बैठे। ज़मीन-जायदाद भी गयी—मगर इसी में था आनन्द, परिपूर्णता! सब खोकर भी मानो ऐसा कुछ पा गये कि हज़ारों लोगों को अपना बना लिया! बेशुमार लोगों की भीड़ में मानो साफ़ दिख जाते हैं—अलग से। अनेक सतर्क निगाहें मानो उन पर लगी रहती हैं—इस चेतना से वे छूट नहीं पाते। मानो अकेले हैं—इतनी बड़ी भीड़ में भी अकेले हैं—अपनी इस नि:स्व-नि:संग और करुण प्रतिमा को चाहने लगे हैं।

अपना नाम बार-बार लेने में उन्हें अच्छा लगता। घरेलू बातचीत में, सभा-सोसाइटी में, अपना नाम वे खुद लेते—"तुम लोग चाहे कुछ कहो, कुछ करो, विमलकृष्ण इसमें नहीं हिलेगा।" या "तुम लोगों ने सोचा है, विमलकृष्ण भड़क उठेगा!" कहते हैं, एक बार कोई अमेरिकी पत्रकार उनसे बातचीत करने आया।

कुरसी से खड़े हो गए। स्वागत करने के लिए दाहिना हाथ बढ़ा दिया। परिचय देते हुए बोले, "मैं विमलकृष्ण पट्टनायक !" आगंतुक सज्जन इतने बड़े नाम का मतलब समझ न सके, जरा जिज्ञासु की तरह देखते रहे तो बोले, "अंग्रेज़ी में अर्थ बताते हुए, "विमल यानी प्योर, कृष्ण यानी कृष्टि-सम्पन्न—कल्चर्ड। पट्ट मीन्स सुप्रीम, नायक का अर्थ है—लीडर।

अर्थात्—आइ एम द प्योर कल्चर्ड सुप्रीम लीडर।"

विदेशी सज्जन इस नाम-माहात्म्य को सुन अवाक् रह गए। वे मान गए—उनके देश में इतना सुन्दर अर्थवाला नाम नहीं मिल सकता।

कोई विदेशी जब अपने देश की वैज्ञानिक उपलब्धि की चर्चा, जैसे चांद पर पहुँचने की बात, कहता तो विमलकृष्ण बाबू अपने देश के पिछड़ेपन पर उदास हो उठते। उनका चेहरा स्याह पड़ जाता। हृदय में से एक कोह उठता। वे मन-वचन-काय से चाहते—हमारे देश का गौरव दुनिया में सबसे ऊपर हो। भारत सदा उन्नति की ओर बढ़ता जाये। मगर वह उन्नति उन्हीं के द्वारा हो या उन्हीं के ज़रिये हो—ऐसी एक बद्धमूल धारणा उनमें घर कर गई है। कहते हैं, एक बार कोई अमेरिकी अपोलो-12 के द्वारा चन्द्रमा पर से मिट्टी-संग्रह की बात कर रहा था। विमलकृष्ण बाबू कुछ क्षण विमर्ष में बैठे रहे, फिर बोल उठे, "अपोलो-12 की क्या बात कहते हैं! यू नो वी हेड अवर नारद—जो चन्द्र ही नहीं, ग्रह-ग्रहान्तरों याने सूर्य, बुद्ध, शुक्र, शनि, मंगल तक मन-मरज़ी से आ-जा सकते थे ! स्वर्ग से धरती और धरती से स्वर्ग तक आ-जा सकते थे। ही वाज़ गोइंग अप-स्टेयर्स !" अन्तिम शब्द बोलने तक कुर्सी से उठ खड़े हुए और एक हाथ ऊपर उठा दिया। इसके बाद जोड़ा, "यू नो, वी हेड अवर विशल्यकरिणी…"

विदेशी सज्जन नारद, विशल्यकरणी आदि की बातें अवाक् सुनते रहे !

विमलबाबू सोचते—कहाँ गया वह युग? त्याग और संघर्ष का सरल, निर्मल, अकपट जीवन ! आजकल तो सभी पैसे के पीछे पागल हैं !

स्वाधीनता आयी। और फिर आया मन्त्रित्व। मगर विमलकृष्ण बाबू जैसे थे, वैसे ही रहने में सुखी थे। बदलने को तैयार न थे। मगर क्रमशः हुआ क्या? कुल बीस वर्ष में सारा देश बदल गया ! लोग बदल गए ! झोंपड़ों की जगह नामी-बेनामी अट्टालिकाएँ खड़ी होती गईं। रद्दी साइकल की जगह नये-से-नये मॉडल की गाड़ियाँ आकर खड़ी हो गईं ! उस दिन स्वराज्य-फण्ड में या कृषक-फण्ड में चावलों की किणकी की मुट्ठी देने वाले कार्यकर्त्ता आज बड़े-बड़े मठों के महन्तों की तरह दिख रहे हैं ! किसी ने राजधानी में दो बिल्डिगें बनवा लीं, किसी ने अपने गाँव में दस एकड़ का बग़ीचा ले लिया। उनकी देखादेखी जो लोग आश्रम में 'रघुपति राघव राजा राम' गाते थे, आज वे परमिट-लाइसेंस बनवाकर माला-माल हैं।…पर वह खुद बीस वर्ष पहले जहाँ थे, वहीं हैं—जरा भी टस से

मेस नहीं हुए !

उलटे गाँव का मकान दिन-ब-दिन टूटता-फूटता जा रहा है। उनके संगी-साथी, मन्त्रीगण उन्हें मरहटिया, बाबा आदम के ज़माने का कहकर खिल्ली उड़ाते हैं। यहाँ तक कि विभागीय उपमन्त्री तक उन्हें पासंग में नहीं रखते। सेक्रेटरी, किरानी, चपरासी—हालांकि लम्बे-लम्बे नमस्कार करते हैं, 'यस सर, यस सर !' करने में कसर नहीं रखते !

विमलकृष्ण बाबू सब समझते हैं, अनुभव भी करते हैं। मगर उनकी अटल प्रतिज्ञा है—"अपने केन्द्र से नहीं हटूंगा !"

खीझ उठते—"विद्रोह करूँगा—बीस वर्ष पहले की तरह।" मगर यह अकेली आवाज़ और विद्रोह की हलकी-सी निष्फल ध्वनि सिर्फ़ उनके बंगले के अहाते में और सेक्रेटेरियट की चारदीवारी में गूंजकर रह जाती।

विराट जन-सभाओं में वे सदाचार और आदर्शवाद का प्रचार ही मुख्य कर्तव्य समझते। सरकारी नीति का बयान करना गौण हो जाता। क्रमशः उनकी सभाओं में लोगों की संख्या कम होने लगी।—"अच्छा, बिमल बाबू मन्त्री ! वे क्या कहेंगे, हमें पता है। बस सत्य, अहिंसा, संयम···की बात, कैसे वे साग खाते हैं, सूत कातते हैं, ये बातें हम जानते हैं।···खैर बहुत अच्छे आदमी हैं। प्योर सोना हैं। वैसे दो-चार और हो जाते तो देश का कल्याण हो जाता ! इस पुआल के ढेर में बस एक ही हीरा आदमी !"

विमल बाबू का खयाल है—"लोग अभी मुझे ठीक से समझते नहीं। अतः परवाह नहीं करते।" उनका मन कभी-कभी दर्द से छटपटा जाता। वे दुनिया पर खीझ उठते। सोचते—"इस भ्रष्ट समाज को उचित शिक्षा देना जरूरी है। तब जाकर मोड़ आयेगा यहाँ। विद्रोह कर इतनी बड़ी गोरी सरकार को हटा दिया गया। बड़े-बड़े राजे-रजवाड़ों—निज़ाम-गायकवाड़ों—को पानी के बुलबुले की तरह मिटा दिया गया। क्या हथियार थे तब ? गोला-बारूद या लाव-लश्कर कुछ भी तो न था—सिर्फ़ था आत्मबल—अपने को बलि देने की लालसा ! और यह मूर्ख दुर्नीतिग्रस्त समाज—इसको दुरुस्त नही किया जा सकता ? अलबत्त होगा।" उनके अन्दर का विद्रोही रण-हुंकार दे उठता। मगर अगले क्षण अपनी मान-मर्यादा, दलगत ज़िम्मेदारी की बात सोच फिर शान्त हो जाते। फिर निरीह मेमने की तरह अपने ऑफिस के या बंगले के लोगों की बातों में हाँ-ना करते, कहीं हलकी भर्त्सना कर देते, या फिर कोई छोटा-मोटा उपदेश देकर रोज़मर्रा की अष्ट-प्रहरी ज़िन्दगी में कहीं खो जाते।

कभी-कभी उनको लगता—"खूब थक गया हूँ—मानो लम्बी बीमारी भोग कर अभी उठा हूँ। और अब लड़ाई···संघर्ष से कोई लाभ नहीं। वरन् इन सबसे एक ओर हट जाना ही बेहतर होगा।"

नियमित गीता का पाठ सदा की आदत है उनकी। साथ में विनोबा के उपदेश और गांधीजी की वाणी वाले ग्रन्थ। आखिर में विवेकानन्द की वाणी, अरविन्द के दिव्य जीवन का स्वप्न। इन सबमें वे एक ही चीज़ निकालना चाहते थे—समाधान ज़रा-सा बूंद-भर समन्वय का, इंच-भर की राह !

उस दिन वे ज्यादा चिन्तित और क्लान्त लग रहे थे—किसी निर्जन काली-स्याह रात के क्षितिज पर श्वेत वस्त्र धारण किये किसी अकेले आदमी के सिलहुट की तरह ! जाड़ों में भी उनके माथे पर पसीने की बूंदें झलक आयीं !

अभी एक सभा समाप्त कर गाँव के स्कूल में आकर बैठे हैं। साथ हैं मछली-पालन विभाग के मन्त्री—विप्रचरण बाबू ! विमल बाबू ने भाषण में कहा था—"देश में किस तरह-दुर्नीति भर रही है—मन्त्री से लेकर नीचे तक, हर स्तर पर, सब भोग-विलास में डूब गए हैं ! गांधीजी के सपनों के स्वराज्य की कैसी विडम्बना हो रही है—खूब अच्छी तरह व्याख्या की। पुराण-इतिहासों से उदाहरण दिये। आखिर अपनी कृच्छ्र साधना और संसार-विमुखता के बारे में भी परोक्षा में, प्रकट में, बताकर भाषण को प्रभावशाली बनाने की चेष्टा की। मगर सभा में उत्साह नहीं···कोई दम नहीं···। लोग उखड़ने लगे। मछली-विभाग के मन्त्री ने देखा—'यहाँ तो खतरा है। जब तक मैं बोलने उठूंगा—खाली कुर्सियाँ, टेबुल या फिर लाइट लाने वाले दो-चार के सिवा कोई न होगा।' उन्होंने विमलबाबू को बैठने का संकेत किया। एक-दो बार उनकी कमीज़ का निचला भाग पकड़ खींचा। मगर वे पक्के थे—आखिर वज्र की तरह ठोक-ठोक शब्दों में कह दिया—"सभा में एक आदमी रहने तक भी मैं बोलूंगा।" मछली-मन्त्री छटपटा गये। तिलमिला उठे। आखिर दिमाग़ में एक तरीक़ा सूझ गया। माइक छीनकर अचानक बोल उठे, "भाइयो और बहनो—भाषण के बाद सरकार के प्रचार-विभाग की ओर से सिनेमा दिखाया जायेगा। अच्छी पिक्चर है ! कटक से चुनींदा रिकार्ड आये हैं। वे भी बजाये जायेंगे बाद में। आप अपनी-अपनी जगह पर धीरज से बैठे रहें।"

बस, सभा सरगम हो उठी ! लोग वापस आ-आकर बैठने लगे। कुछ को अपनी जगह छोड़ जाने का अफ़सोस हो रहा था।

अब खड़े हुए मछली-मन्त्री। लम्बा भाषण चला। लोगों ने धीरज से सुना। सुई तक गिरे तो आवाज़ सुनाई पड़ती। किसी ने ज़रा चूं तक नहीं की। सामने जमे निम्न प्राइमरी के बच्चे तक दम साधे चुप-चाप बैठे रहे।

ज़ोरदार तालियों में सभा समाप्त हुई। स्कूल के बड़े हॉल में रात्रि-भोजन की व्यवस्था की गई थी। विमलकृष्ण बाबू मुंह मोटा किये एक छोटी टेबल पर हट कर बैठे थे। बाक़ी गाँव के मुखिया और सरपंच सब मछली-विभाग के मन्त्री के साथ गहरी बातचीत में जमे थे। विमलकृष्ण बाबू को उसमें कोई रुचि न थी। बहुत सूना-सूना लग रहा था उन्हें। इस दुनिया में मानो वे अकेले हैं, एकदम अकेले

—संगी-साथी-विहीन किसी द्वीप के निवासी की तरह अकेलापन घेरे था उन्हें। भोजन परोसा गया। चर्वण, चूषण, लेहन, पेय आदि तरह-तरह की सामग्री लायी गई। भात, साग और दाल भी परोसी गई। कुछ और परोसने से मना कर दिया विमलकृष्ण बाबू ने। बोले, "मैं भात-डालमा ही खाऊंगा।" गाँव के जुगाड़ी लोगों का, जिन्होंने यह उत्सव आयोजित किया था, मुंह स्याह पड़ गया। सममुच उनकी हालत खस्ता हो गई। मगर विमलकृष्ण बाबू ने बेलाग शब्दों में कह दिया—

"मैं भात-डालमा (दाल में ही सब्जियाँ डाल कर उबाल देने की पद्धति को डालमा कहा जाता है) खाता हूँ। वही खाऊँगा। जब लाखों लोग भूखे-प्यासे हैं, बाढ़ और अकाल में मर रहे हैं, वे घास-पात-तक नहीं पाते, तब हमें भोज के आयोजनों में डूबना शोभा नहीं देता।"

उस इलाक़े के सरपंच, बी. डी. ओ. सब हाथ जोड़े खड़े थे। मिन्नत के स्वर में कहने लगे, "हुजूर! खाना तो बना दिया है। सब नष्ट हो जायेगा। पहले से पता होता तो ये सब नहीं बनाते!"

विमलकृष्ण बाबू ने और तेज़ पड़ कर कहा, "नष्ट होगा? क्यों? ग़रीब क्या नहीं हैं? उन्हें खिला दिया जाये!"

सरपंच सिर खुजलाने लगे। तभी मछली-विभाग के मन्त्रीजी ने बचा लिया उन्हें। ज़ोर से बोल उठे—"अब ले आओ सरपंचजी! जो बनाया है दो! मिल-बाँट कर थोड़ा-बहुत खा लेंगे। वे ठहरे बाबाजी! उनकी बात छोड़ो! उनकी बात का विचार न करना!"

सरपंचजी, बी. डी. ओ. साहब की जान-में-जान आ गई।

खाने बैठे तो देखा—सब की नज़र मछली-विभाग के मन्त्री जी और अच्छे खाने-पीने वालों पर है। लोगों की भीड़ उधर ही ज्यादा है। कोई मछली का झोल लिये पहुँचता है तो कोई सिर!

"जी, थोड़ा-सा मसाला!"

"जी, बस ज़रा-सा कोरमा!"

मछली-विभाग वाले मन्त्री जी और साथ के ऊँचे अफ़सर साहब हाँ···हाँ··· ना···ना···, बस···बस ज़रा-थोड़ा कहते हुए परोसने वालों को प्रसन्न कर रहे थे। "खूब! अच्छा है, बढ़िया है" कहकर सर्टीफिकेट देते जा रहे थे। अब आये दही, सालेपुरी, रसगुल्ला और केन्द्रापड़ावाली रसवाली!

कोई हिम्मत नहीं कर पाता विमलकृष्ण बाबू के पास फटकने की। आध घण्टे में कोई एक बार भी नहीं जा सका। सरपंचजी एक बार गए थे, "जी, एक चम्मच भात! ज़रा-सी दाल!" विमलकृष्ण बाबू का इस्पाती उत्तर—"ना!" वे घबराकर लौट आये। दुबारा जाने का साहस न हुआ।

विदाई का वक़्त आ गया। विमलकृष्ण बाबू का चेहरा गम्भीर दिख रहा था।

फिर भी हलकी-सी मुस्कान बिखेर कर नमस्ते की। विदा ली। किसी के कन्धे पर हाथ रखा, किसी युवा कार्यकर्ता से हँसते हुए पूछा, "बेटे, अच्छे हो?" (हालाँकि वह बचपन से अनाथ है, अचकचा कर सिर खुजलाने लगा)। लग रहा था जैसे सब उनसे कतरा रहे हैं। हिम्मत नहीं पड़ती पहले की तरह खुलकर मिलने की।

कई दिन बाद निश्चिन्तपुर गांव में एक और सभा का आयोजन था। विमल-कृष्ण बाबू अपनी चुनाव वाली पुरानी जीप में दो घण्टा देर से पहुँचे सभास्थल पर। सभा में एक आदमी रहने तक—सत्य और सदाचार पर भाषण दिया। और फिर आयी भोजन की बारी। खाते समय वही संकट दिखाई पड़ा। विमल बाबू ने ज़िद कर ली—"मैं तो सिर्फ़ भात-डालमा ही खाऊँगा।" उपस्थित लोगों ने काफ़ी ज़िद की, तब जाकर साग ज़रा-सा, पंचायत ऑफ़िस के अहाते में लगे बैंगन के भाजा दो-चार परोसने अनुमति दी। मगर मछली तो छुई तक नहीं। अन्त में सरपंच जी ने, जिनकी प्रखर बुद्धि का लोहा उस इलाक़े के सब मानते थे, हाथ जोड़ कर कहा, "स्कूल के पोखर में आज मैं ने खुद बंसी डालकर एक छोटी-सी मागुर मछली फँसायी थी। बस उसे ही अलग से मन्त्री जी के लिए भाजा बनवा कर रखा है।" आनुगत्य, सरलता देख मन्त्रीजी मुग्ध हो गए! "ख़ैर, बस, उतना ही देना!"

कुछ दिन बाद एक और ज़िले में, कन्दलपुर गाँव में, एक और सभा का आयोजन। तब तक चारों ओर लोगों में खबर फैल चुकी थी—विमलकृष्ण बाबू मन्त्रीजी भात-डालमा के सिवा कुछ नहीं खाते! कानों-कान खबर सारे राज्य में फैल गई थी। अतः सभा के आयोजकों ने मितव्ययिता और वसूले गए चन्दे की रक़म को देखते हुए, भात-डालमा ही बनवाया। सभा में स्वागत, मानपत्र और भाषण के बाद मन्त्रीजी महाराज जीमने पधारे। आसन पर विराजमान होते ही धुरन्धर बी. डी. ओ. साब ने नम्र स्वर में निवेदन किया—"जी, सब-कुछ बनाया है! मछली, मांस, अंडा, खीर, डालमा!" उनकी बात पूरी होते-न-होते मन्त्री जी ने हाथ हिलाकर कह दिया, "सिर्फ़ भात और डालमा!" बी. डी. ओ. का तुरत उत्तर था—"जी, विदुर के घर साग-पात! हम जानते हैं, आप और कुछ नहीं छुएँगे!"

मन्त्री जी खुश! इतने दिन बाद लगा, जैसे लोग उनकी बात, उनकी नीति समझ रहे हैं। ख़ैर, धीरे-धीरे ही तो समझेंगे! जाएँगे कहाँ? प्रशंसा में बोल उठे, "लोगों को खाने को नहीं मिलता, हम इधर खूब आडम्बर से भोज में पैसे बरबाद करें! घोर पाप है, अन्याय है! जो पकाया है—ग़रीबों में बाँट दो।" उस दिन मन्त्री जी के लिए अलग कोठरी में आसन लगाया गया था।

महीने-भर बाद की बात है, गंजाम ज़िले के शूली गाँव में गोशाला समिति का वार्षिकोत्सव था। सभा-कार्य के बाद मन्त्रीजी पधारे भोजन करने। गोशाला

के सेक्रेटरी थे स्थानीय उच्च प्राइमरी स्कूल के हेड मास्टर। बी. डी. ओ. सा'ब ही सभा के आयोजक थे। सब थे धार्मिक, सरल लोग। वे मंत्रीजी के आन्तरिक अनुयायी, भक्त और अनुगामी कहे जा सकते हैं। बी.डी.ओ. अपर्ती बाबू खाँटी वैष्णव हैं। गले में तुलसी की कण्ठी, माथे पर तिलक लगाते हैं। छह महीने और रह गये···रिटायर होने वाले हैं। मन्त्रीजी के आसन के पास बैठे खाने-पीने की चर्चा कर रहे थे। भात-डालमा के साथ अरबी का संतुला (बिना छौंक दी गई उबली तरकारी) परोसा गया।

मंत्रीजी खुश हो गए! पूछा, "और क्या बनाया गया है? बाक़ी जो बनाया है, आप लोग खा लें।" बी. डी. ओ. ने कहा, "जी, और कुछ नहीं। जब लोग बिना खाये मर रहे हैं, गायों की हालत दाने बिना खराब हो गई है। तब आप लोगों को भात-साग के सिवा और क्या रुचेगा? आप हैं हमारे आदर्श! हमारे युग के राजर्षि जनक!···हें···हें···"

विमलकृष्ण बाबू का चेहरा लाल पड़ गया। उन्हें लगा, जैसे सब उनकी बेखातिरी कर रहे हैं! उन्हें सीधा, सरल समझकर उनका असम्मान कर रहे हैं, नापसन्द कर रहे हैं। वरना उनके-जैसे गण्यमान्य उच्चपदस्थ आदमी का यों साग-भात परोस कर स्वागत होता? मन-ही-मन सब पर, समूचे समाज पर क्रोध में भर गए। मगर चेहरे पर हल्की मुस्कान लाकर बोले—

"ठीक है! ठीक है! जल्दी ले आओ। देर हो रही है। बारह बजे तक राजधानी पहुँच जाना होगा!"

दो-चार ग्रास मुंह में डाल तमतमाये चेहरे से जाकर गाड़ी में बैठ गये। हफ़्ते भर बाद तार से खबर आयी—बी. डी. ओ. अपर्ती बाबू का कंधमालभूमि वाले इलाक़े में तुरत तबादला हो गया है। हालांकि इसके ठीक चार-पांच दिन बाद, एकदम अयाचित रूप में, उस तबादले के आदेश का स्थगन-आदेश भी ऐक्सप्रेस तार से आ पहुँचा था।

●

राजा, रानी और कुत्ता

राजा, रानी और कुत्ता—तीनों को देखा।

कलकत्ते में मध्यवित्त श्रेणी का किराये का मकान।

छत पर कुर्सी डाल राजा-रानी बैठे गप्पें मार रहे थे। देसी रजवाड़ों की तरफ़ से साथ आया नौकर नरहरि तिपाई पर चाय-पावरोटी रख, हुक्के के लिए आग लाने को रसोई की ओर गया था। राजा के पाँवों-तले चारों पाँव पसारे धूल-सना कुत्ता लेटा-लेटा अपनी जीभ से पेट और पीठ चाट रहा था। बीच-बीच में राजा द्वारा फेंकी गई पावरोटी के टुकड़े लपककर फिर अपनी जगह आ बैठता।

साँझ हो आयी। चारों ओर हवा ख़ूब ठण्डी हो रही थी। मगर राजा के माथे और चौड़े गालों पर पसीना उभर आया था। आँखों में भारी चिढ़ और बेमतलब अतृप्ति की छाया।

रास्ते का बिजली का खम्भा दप्-से जल उठा। कुछ दूरी पर बड़ी-सी लोहे की शब्बल और हथौड़ी लिये सड़क मरम्मत करनेवाला ट्राम-लाइन की जाँच कर रहा था। शब्बल को लाइन में घुसेड़ कर हथौड़ी से पीटकर ठन्-ठन् की आवाज़ करता। इसके बाद, काला कुर्ता पहने वह मूर्ति पता नहीं कब ग़ायब हो गई।

राजा अनमने उधर देखते रहे।

बीच-बीच में राजा का मन बिगड़ जाता। दुनिया पर, सब पर और ख़ुद पर भी चिढ़ उठते हैं। फिर ठण्डे हो जाते हैं—जाड़ों के अपराह्न में सीमेण्ट की इस छत की तरह ही। रानी बहुत गम्भीर, आत्म-सचेतन दिखती। लगता नहीं कि कहीं कुछ हो गया है। मगर भीतर ही भीतर कैसे भी तो सुलगती होगी। और उस काले धुएँ से भरी आग को अन्दर दबाये रखने की मानो जी-जान से कोशिश कर रही होती। नौकर बराबर काम करता जाता। कभी-कभी वह बुद्धू की तरह हँसता, कभी-कभी ख़ुद को अधिक चालाक ज़ाहिर करता और ठोकर खा बैठता, मगर काम ठीक करता। और कुत्ता? वह पूँछ हिलाकर कूँ-कूँ करता। पाँवों में सिमट-गुमट कर सट जाता। किसी नवागन्तुक की गन्ध पाकर तो ख़ूब ज़ोर से भौंक उठता, मानो अभी अपनी वीरता या अपनी ज़रूरत दिखाने जा रहा है।

इस बेतरतीब दुनिया में हैं राजा, रानी और कुत्ता। कुत्ता तो सदा कुत्ता ही ठहरा।

उस दिन राजा-रानी टैक्सी लेकर बाइस्कोप देखकर लौट रहे थे, तभी यह कुत्ता गाड़ी के नीचे आ गया। रानी ने नौकर के हाथों उठवाया, अपने पास ले कर बैठाया। तब से कलकत्ते की अजान गली का यह आवारा कुत्ता राजा-रानी की दुनिया का अंग बन गया है। एकदम उपेक्षित हो या अनावश्यक हो, वह भी इस दुनिया का एक प्राणी है, इस बात में सन्देह नहीं रहा।

राजा कलकत्ते की आबोहवा की बात कह रहे थे—एकदम अस्वास्थ्यकर है यहाँ की जलवायु। हवा में धुआँ और कोयले के टुकड़े। सुबह उठते ही नाक से इंच भर मोटी पर्तें निकलती है। कमरे में गरमी—जाड़ों में भी पंखा चलाओ, कुछ भी तो आराम नहीं। महीने में एक-आध बार सरदी-गरमी तो लगी रहती है। इससे तो अच्छा होता दार्जिलिंग चले जाते—मगर वहाँ खर्च भी तो बेशुमार हैं। सरकार से मिलने वाले भत्ते में इतना बड़ा परिवार चलाना मुश्किल है। कोशिश कर रहे हैं, सस्ते में कोई घर लम्बी मियाद पर पट्टे में लेने के लिए। मगर अभी कुछ तय नहीं हो पाया। उन्हें शक है, शायद गढ़ के दुश्मन वहाँ भी कोई साज़िश कर रहे हैं, घर-मालिक के पास। राज की कोई बात उनसे छुपी नहीं रहती। लगता है, कलकत्ते के डाकखाने वालों से मिलकर राजा की हर चिट्ठी वे पढ़ लेते हैं और पहले ही सारी बातें जान जाते हैं। राजा बुरी तरह झुंझला उठे। माथे पर बूंद-बूंद पसीना उभर आया है।

इसी बीच नरहरि हुक्का सजील कर ले आया है। राजा की चिन्ता को ज़रा मोड़ लेने का अवकाश मिल गया। मन कुछ हलका हो गया। हुक्के की नली अपनी ओर कर गुड़गुड़ाने लगे। रास्ते की ओर देखने लगे।

जगह-जगह सड़क की मरम्मत हो रही है। गरम अलकतरे की गन्ध हवा में तैर आती है। दूर ट्राम-मज़दूरों का शोरगुल सुनाई पड़ रहा है। जुलूस जा रहा है उनका। घर के सामने वाली पान-शरबत की दुकान में बत्ती लग चुकी है। कॉरपोरेशन के कुछ कुली काम से लौटते हुए वहाँ पान-बीड़ी खरीद रहे हैं। राजा हुक्का गुड़गुड़ाते हुए उस सारे दृश्य को देख रहे हैं। अचानक ऊँची आवाज़ में पुकारा नरहरि को—

"···जा, जाकर देखना वो बिजली के खम्भे के नीचे इधर बार-बार क्यों देख रहा है?"

नरहरि ने ग़ौर से देखा। "इसे तो सुबह भी देखा था! महाराज, वहीं खड़ा था!"

राजा घबरा गए। माथे की सलवटें सिकुड़ गईं, "सुबह खड़ा था? तो दिन भर से वहीं खड़ा है? शायद कोई प्रजामण्डल का आदमी होगा। हमारी गति-विधियों का पता लगाने आया है। ज़रूर उसका कोई मतलब है।

"तू उस पर नज़र रखना। नरहरि! मैं जा रहा हूँ, उसे पुलिस में दे दूंगा।

देखो, भागने न पाये। वदमाश लगता है, हम पर हमला करेगा…।"

उनकी आवाज़ तेज़ हो गई थी। कुर्सी छोड़कर खड़े हो गए। पाँव तले से कुत्ता भी झाड़-झूड़ कर खड़ा हो गया, उनके चारों ओर फिरकर सूंघने लगा।

रानी घबरा उठी। धीरज रखने के लिए कहा, "रास्ते पर कितने ही लोग आना-जाना करते हैं। कोई होगा! तुम नीचे न जाना राजन्! नरहरि जाकर पता लगाये!"

राजा फिर कुरसी पर बैठ गए। रूमाल से चेहरा पोंछ लिया। नरहरि ने आकर खबर दी—वह इसी गली का आदमी है। लकड़ी की टाल है इसके बाप की। माखन नाम है।

नरहरि ने बताया, "मुझे उधर आते देख वह एक और आदमी के कन्धे पर हाथ रख गली के मज़दूर संघ के दफ़्तर में घुस गया है।"

राजा ने कहा, "ना, ना। आजकल किसी का विश्वास नहीं। उस पानवाले से कोई चीज़ न खरीदना। खबरदार, यहाँ के बाज़ार से भी कोई सामान न लाना। जो चाहिए वस जाकर न्यू मार्केट से लाना। कौन जाने, प्रजामण्डल का कोई आदमी यहाँ की सारी दुकानों को अपने प्रभाव में कर ले। वे बराबर हमारे पीछे लगे हैं। यहाँ तक कि संबलपुर रेज़ीडेंट साहब के दफ़्तर के कुछ किरानियों को भी अपनी मुट्ठी में कर लिया है। मैं जो पत्र लिखता हूँ, उन्हें पता चल जाता है। पिछले महीने मैंने अपने राज्य में लौटने की इजाज़त माँगी थी। तू खुद जाकर बड़े डाकखाने में रजिस्ट्री कर आया था, वो रसीद भी मेरे पास दुरुस्त है। मगर वह बात प्रजामण्डल में चारों ओर फैल गई। तुरन्त राज्य भर में जुलूस, सभा, हड़ताल हो गई। सरकार को तार भेजे गए। सब सत्यानास कर दिया। इनका कोई भरोसा नहीं।"

नरहरि ने सहानुभूति में कहा, "महाराज, आपका भगवान सहायक होगा। हज़ार आदमी महाराज के पीछे पड़ें, क्या कर सकते हैं? श्रीहुज़ूर राज्य में गए बिना बाहर भी रहें, कोई छाया भी नहीं छू सकेगा।"

राजा अन्यमनस्क हो गए। बाहर एक मरियल घोड़े को पीटते हुए कोचवान फिटन दौड़ाये जा रहा है। लोहे के पहियों की वह कर्कश आवाज़ कान लगाकर राजा सुनते रहे।

राजा को अन्यमनस्क देखकर नरहरि ने कहा, "महाराज! आज मैं अपने गढ़ के परि साहू को छोड़ने हावड़ा गया था। अपने राज्य के कुछ लोगों से भेंट हो गई। सब लकड़ी-चोरी में सज़ा-याफ़्ता हैं।—कोई अपील करने संबलपुर गए हैं, कह रहे थे—राज्य के सभी हुज़ूर को याद करते हैं। कहीं प्रजामण्डल वाले बाहर न कर दें, इस डर से कुछ बोल नहीं पाते। उन सबने हुज़ूर को वापस लेने के लिए सरकार बहादुर के पास बेनामी दरखास्तें भेजी हैं।"

राजा गद्‌गद हो गए, "याद करेंगे। मेरी प्रजा मुझे याद नहीं करेगी? मैं राजा था—राजा हूँ—ज़िन्दा हूँ—मेरी प्रजा याद करेगी मुझे। हमारी रिआया हमेशा ऐसी न थी। बाहर के दो-चार बाग़ी बदमाश उन्हें सिखा-पढ़ाकर बिगाड़ रहे हैं। राजा-प्रजा में सात पीढ़ी का चला आ रहा बाप-बेटे का सम्बन्ध जला-कर राख कर दिया!"

नरहरि ने कहा, "उनका कहना था कि पहले कोई चोरी-वोरी करता था तो सब सम्हाल लेते। किसी की पीठ पर दो बेंत सटकार देते, तो किसी से दो-चार रुपये जुरमाना अदा कर लेते और मामला वहीं रफ़ा-दफ़ा हो जाता। मगर अब हर बात में चालान, मुक़दमा···जेल···। ये नये मनेजर के ज़माने में कोई एक रुपया भी घूस दे तो तुरन्त हथकड़ी! राज्य के सारे मामलातकार, सरबराकार, मुकद्दम, टाउटर—सभी त्राहि-त्राहि करने लगे हैं।

राजा ने कहा, "बाहर मुगलबन्दी के लोग आकर मेरे राज्य को तहस-नहस कर चुके हैं। पहले हमारी प्रजा बेगार में ऊँ-चूं तक नहीं करती थी। 'राजा जी का काम' कहकर बुलाओ चाहे न बुलाओ, सारा काम खुद ही हँसते-हँसते निपटा देते थे। पहले दरबार का खज़ाना, मालगुज़ारी, टिक्कस देंगे, बाक़ी रुपया बाद में टेंट में रखते, मगर कुछ परायी सीख में पड़कर इन दंगाइयों ने सबका माथा ख़राब कर दिया, सारा इलाक़ा बरबाद हो गया।"

तभी कुत्ता भौंक उठा।

रानी ने कहा, "कोई आ रहा है। तारवाला आया है।" राजा को सलाम कर एक तार आगे बढ़ा दिया। राजा ने उसके खाते में सही कर दी। तार लेकर पढ़ने लगे, पढ़ते-पढ़ते चेहरा हँसी में भर उठा। पियन को बख़्शीश देकर विदा करने का इशारा कर दिया नरहरि को। दुबारा तार पढ़ने में लीन हो गए।

इसके बाद रानी की उत्सुक आँखों को जवाब दिया—"कटक से पेशकार का तार आया है। मुझे राज्य में लौटा लेने के लिए सौ से भी अधिक सरबरा-कार, प्रेसिडेंट, बेवर्ता ने दस्तख़त सहित एक दरख़ास्त सरकार बहादुर को पेश की है। देखें, क्या होता है···भगवान की इच्छा!···"

रानी ने पूछा, "इससे कोई फ़ायदा होगा?"

राजा ने कहा, "ज़रूर होगा··ज़रूर होगा। लोग मुझे चाहते हैं। किसकी ताक़त है जो मुझे उनसे दूर रखेगा?"

नरहरि ने कहा, "हुज़ूर! कुछ भी कहिए, उस राज्य में महाराज का लौटना ठीक नहीं होगा। जान है तो जहान है···जीते रहें, हज़ार राज्य मिलेंगे। महाराज विदेस में हैं। किसी का मुंह नहीं खोलना। राज्य में लौटने पर तरह-तरह के दंगे-फिसाद होंगे···बगावत। पिछली बार तो हुज़ूर ने खुद देखा है—गढ़ में कैसे जन-समुद्र हिलोर ले रहा था। आदमी पर आदमी—बेशुमार लोग

सात दिन, सात रात गढ़ में ही पड़े रहे। लाखों लोग बग़ावत कर भूखे-प्यासे पड़े रहे। महल को घेर लिया। बस, जगन्नाथ जी की कृपा रही, सो महाराज की देह में खरोंच भी नहीं आयी। मैंने देखा है महाराज, लाखों आँखें अँगार-जैसी जलती हुईं। सिर्फ़ गढ़ में ही नहीं, जो लोग बाल-बच्चों को लेकर हिजरात कर मुगलबन्दी इलाक़े में चले गए, उनकी बाघ-जैसी भूखी आँखें आज भी मन से नहीं मिटतीं। मैं तो हुजूर से दरखास्त करूँगा—आप राज्य में न लौटें।"

राजा ठहाका लगा बैठे पागलों की तरह, "हाँ, मैंने भी देखा है, देखा है वो सब ! महल पर खड़े होकर दूरबीन लगाकर देखा है—भेद गई अन्दर तक ! हम सिहर उठे !"

रानी ने कहा, "अंग्रेज़ बहादुर तो हैं, फिर हमें डर कैसा ? सरकार बहादुर क्या फ़ौज-पलटन नहीं देंगे ?"

नरहरि ने कहा, "नहीं महाराज ! ख़ुद सरकार का भी सिंहासन हिल रहा है। प्रजा की बग़ावत ! कौन बाड़ लगायेगा ? समुद्र की लहर जैसा ही होता है प्रजा का हल्ला, इसे कोई रोक नहीं सकता।"

"हमारे न जाने पर···ये जो पेशकार, दफादार, कानगोई, दारोगा हैं—घर-बार छोड़ कटक में डेरा डाले पड़े हैं···! इनकी क्या दशा होगी ?"

रानी ने कहा, "हाँ, हाँ ठीक कहा ! ये बेचारे क्या करेंगे ?"

नरहरि बोला, "सच हुजूर ! इनकी तो जान ही न रहती। हज़ारों लोगों ने इनके घर-बार पर हमला बोल दिया। राजा के आदमी कहकर पीस ही डालना चाहते थे। सांड बने फिरते थे वे जवान छोकरे, बस प्रजामण्डल के सभापति जो थे, उन्होंने रोक दिया। वरना···"

तभी कुत्ता फिर भौंकने लगा। राजा ने चिढ़कर उस पर एक ढेला दे मारा। मार खाकर वह कें-कें करता सीढ़ी की ओर भाग गया।

रानी ने कहा, "च्···च् इसे क्यों मारते हैं ? यह कुत्ता है, तभी तो विदेश में इतनी चीज़ों को लेकर हम रह रहे हैं, चोरों का डर नहीं, कल रात वह फल वाला इधर पैर बढ़ा रहा था। धाय और नौकरानी दोनों पन्ने उलट रही थीं। देखा तो भौंकते-भौंकते धकेल ले गया उसे फाटक के उस पार।"

राजा ने अन्यमनस्क स्वर में कहा, "पेरिस से हम पच्चीस हज़ार नगद देकर जो ग्रेहाउण्ड का जोड़ा लाये थे, उसके साथ इसकी तुलना करें तो इस पर थूकने को भी मन न करे। आते वक्त हमें घण्टे भर का समय कहीं और मिल जाता तो देखो, कुत्तों को साथ ही ले आते। चौबीस घण्टों में गढ़ छोड़ना न पड़ता तो कई अच्छी-अच्छी चीज़ें साथ ला सकते थे। यहाँ आकर भी मैंने ख़बर भेजी थी। मगर जिसे भेजा था, लौटकर उसने बताया—कोर्ट ऑफ़ वार्ड्स के नये मैनेजर के बँगले में वे दोनों कुत्ते बँधे हैं।"

रानी ने गहरी साँस लेकर कहा, "छोड़ो वे बातें। अतीत को बिसूरकर क्या होगा ? भगवान की जो इच्छा होगी, वही होना है। यह कुत्ता है तो अपने कितने काम आता है।"

उनकी आवाज़ खूब बोझिल और करुण हो आयी थी। राजा यह समझ गये। बात को बदलने के लिए एक कहानी सुनाने लगे—

"सुन रही हैं रानी साहबा ! हमारे दादाजी का एक गबरू कुत्ता था, नाम था टीपू ! जिस दिन दादा सामंत का इन्तक़ाल हुआ, टीपू साथ-साथ मशान तक गया। चन्दन की चिता पर जब उनकी देह रखी गई, टीपू बिना कुछ कहे उधर देखता रहा। शवदाह के बाद टीपू ने ऊपर की तरफ़ देख तीन बार हूक लगाई। अगले पंजों से मशान की धरती कुरेदी। और वैसे ही पड़ा रहा—और वह नहीं लौटा !"

इसके बाद नरहरि की ओर देखकर बोले, "तेरे बापू को सब पता है। तब वह महल में काम किया करता था।"

नरहरि ने कहा, "हाँ हुजूर, मेरे बापू ने कई लोगों को यह बात बतायी है, मैंने लोगों के मुँह से ऐसा ही सुना है। बापू की तो ठीक से याद नहीं मुझे। वे मरे, तब मैं चार बरस का था। बस, इतना याद है उस दिन टप-टप बरखा झर रही थी। बापू को एक चटाई में बाँध-बूँध आँगन में लाकर अर्थी पर लादा, दो मेंढक फुदक रहे थे उस गीली धरती के पास। मुझे एक पड़ोसी लड़के ने कुहनी से कोंच कर कहा था—'तेरा बापू !' "

तभी सड़क पर शोर-शराबा हुआ। दो रिक्शेवालों के बीच सवारी को लेकर झगड़ा था। नरहरि चला गया।

राजा ने कहा, "मुझे पता नहीं क्यों, रानीजी, इस आदमी पर बहुत शक होता है। दूसरे के मन में जहाँ चोट लगी है, ठीक वहीं से यह अजीब झंकार निकाल सकता है। आदमी के मन में भिन्न-भिन्न स्वर लेकर खूब अजीब ढंग से खेल सकता है यह। कई बार तो देखा है—जब मैं एकदम अनमना रहता हूं, एकटक मेरी ओर देखता रहता है। पता नहीं, मन-ही-मन क्या सोचता रहता है ! मेरे मन की हर बात टटोलकर बाहर निकालने के लिए यह चेष्टा करता लगता है ? सचमुच अगर बुद्धू होता तो फिर ऐसा व्यवहार नहीं करता।"

रानी ने कहा—"आप तो सब पर शक करते हैं। अपनी छाया पर भी भरोसा नहीं रहा आपको ! अब कलकत्ता जैसी जगह पर सच्चा चाकर कहाँ से पाओगे ? यहाँ के लोग तो ऐसे ही चोर हैं।"

चारों ओर सन्नाटा। ऊपर नाक-कान-कटे सूर्पणखा जैसे मेघ पैंतरे भर रहे हैं। राजा-रानी दोनों देर तक उधर देखते रहे।

× × ×

कुछ दिन बाद···

राजा को हुक्म मिला राज्य लौटने का। गढ़ से पेशकार, कानगोई, दरोगा, दफादार सब राजा को स्वागत कर लिवा लाने के लिए कलकत्ता आये हैं।

खुद रेज़ीडेंट साहब राजा का स्वागत करने को गढ़ में प्रतीक्षा कर रहे हैं। छोटा-सा किराये का मकान, भीड़ मुखरित हो उठी है। गढ़ से दासी, परिवासी, चाकर, नाई आये हैं राजा की वापसी यात्रा में शामिल होने के लिए।

सामान बाँधा जा चुका है।

राजा-रानी, लोग-बाग, दास-दासी सबको स्टेशन। बन्धु-कुटुम्बी, साहेब-सूबा, राजों-रजवाड़ों को खबर देकर भेंट-मुलाक़ात के बाद सीधे, उधर स्टेशन चल पड़ेंगे। जाते-जाते नरहरि को कह गए, बाक़ी सामान लदवा कर गाड़ी स्टेशन ले आना।

राजा-रानी टैक्सी में बैठने लगे तो नरहरि हाथ जोड़ खड़ा हो गया। बोला, "हुजूर! मेरी छुट्टी मंजूर कर दें। मैं गढ़ नहीं लौटूंगा। यहीं कलकत्ते में जूट मिल में कहीं मजूरी कर लूंगा। इजाजत हो!"

राजा-रानी आश्चर्य में भर गए। "क्या! इतने दिन बाद गाँव लौटने को तेरा मन नहीं करता?"

"नहीं हुजूर! आपकी सेवा में तो अनेक लोग जा रहे हैं। वहाँ गढ़ में नौकर-चाकरों की कोई कमी न रहेगी! मैं स्टेशन पर सामान पहुँचा रुखसत होना चाहता हूँ।···मैं उस जलती आग में लौटना नहीं चाहता। जंगल की आग अभी बुझी है, अभी जल उठेगी···पहाड़-दर-पहाड़ फैल जायगी, उसका कोई ठिकाना है हुजूर!"

नरहरि को डरा देख राजा-रानी दोनों हँस पड़े। उनके घर लौटने की खुशी में नरहरि की कापुरुषता ने ज़ोरदार रसद जुगा दी।

राजा ने कहा, "हम सब जा रहे हैं, तुम्हें अकेली जान के प्रति इतनी माया-ममता क्यों?"

नरहरि ने कहा, "हुज़ूर, आप बड़े आदमी हैं। आपके पास सिपाही-सेना रहेगी। आप गाड़ी-घोड़ा में रहेंगे। मैं ग़रीब बिचारा हाट-बाज़ार, खेत-खलिहान के धन्धे, वन-जंगल, पहाड़-पर्वत फिरता फिरूंगा। प्रजामण्डल वाले अब की बार मुझे नहीं छोड़ेंगे। हुजूर का आदमी जानकर ज़रूर जान ले लेंगे।"

राजा-रानी ने एक साथ ठहाका लगाया।

नरहरि ने सामान ले जाने के लिए गाड़ी किराये पर की, स्टेशन पर चल पड़ा। रह गया कुत्ता—उस बेचारे की याद इस वापसी की मौज-मजलिस, हो-हल्ला में किसी को नहीं रही।

कुछ दूर जाने के बाद बस्ती के मजदूर संघ का कार्यकर्ता माखन पीछे से

दौड़ा-दौड़ा आया। नरहरि के हाथ में एक लिफ़ाफ़ा बढ़ा दिया।

नरहरि के सारे गुप्त काग़ज़-पत्र इसी माखन के नाम-पते पर आते हैं।

लिफ़ाफ़ा खोलकर देखा। एक और लिफ़ाफ़े में बन्द है चिट्ठी। घबरा कर लिफ़ाफ़ा खोला। प्रजामण्डल के मन्त्री ने लिखा है—

"तुम्हारे पत्र पाकर सारे समाचार जाने। राजा लौट रहे हैं, यह जान प्रजा में विद्रोह की आग सुलग उठी है। किस दिन और ठीक किस गाड़ी से वे आ रहे हैं, खबर देना। स्टेशन पर काले झण्डे दिखाने और विरोध में जुलूस की व्यवस्था करेंगे। जनमत राजा के लौटने का घोर विरोधी है।

"तुम पिछले चार वर्ष से नाना दुःख-कष्ट सह कर, यातना के बीच रहकर भी, प्रजामण्डल का कार्य करते रहे, यह हर साथी और देशभक्त के लिए गौरव की बात है। तुमने लिखा है—तुम प्रजामण्डल के आदमी हो यह बात दो-चार चोटी के नेता जानते हैं। बाकी सारी दुनिया जानती है कि तुम राजा के विश्वस्त नौकर हो। अतः घर लौटने के बाद तुम खतरे में पड़ सकते हो, मेरे ख़याल में तुम्हारा गढ़ न लौटना ही उचित होगा। कलकत्ते में हमारे राज्य के काफी लोग हैं, वहाँ उनके मन में हिम्मत और साहस लाने का उपाय करो, प्रजाशक्ति की जय निश्चित है।

—तुमने लिखा है कि इन चार वर्षों में राजा-रानी के जीवन का ज्वार-भाटा देखते-देखते तुम्हारे मन में उनके प्रति व्यक्तिगत रूप से ममता बढ़ गई है। आदमी आदमी को चाहे, यह तो एक स्वाभाविक बात है। तुम्हारे मन का भाव प्रजामण्डल के हर आदमी का भाव होना चाहिए। व्यक्तिगत रूप में हम राजा-रानी की सुख-शान्ति की कामना करते हैं। वे बाहर या राज्य में और पाँच आदमियों की तरह सुख-शान्ति से रहें। इसमें किसी को कुछ नहीं कहना, मगर शासन अन्ततः जनता के हाथ में आना ही चाहिए, यह ध्रुव सत्य है। हम प्रजा का शासन चाहते हैं। शायद फिर लड़ाई की ज़रूरत पड़ेगी, तैयार रहना।

तुम्हारे सहकर्मी···"

नरहरि ने माखन के हाथ में पाँच का नोट बढ़ा दिया, जेब से तार का फ़ार्म निकाल कुछ कहा और जल्दी तारघर में देने की ताक़ीद कर दी। नरहरि के कहे मुताबिक अंग्रेज़ी में माखन ने लिख दिया तार का मज़मून—

"पिता आज पैसेंजर से जा रहे हैं। स्टेशन पर आकर स्वागत का बन्दोबस्त करो।—सुधाकर!"

माखन ने पूछा, "तेरा नाम क्या सुधाकर है?"

नरहरि ने कहा, "प्रजामण्डल के हिसाब से।"

"यह मेरा सरकारी नाम है।"

स्टेशन पर भारी भीड़। राजा और रानी अपने फ़र्स्ट क्लास वाले रिज़र्व डिब्बे

में बैठ गए। बाक़ी लोग अपनी जगह ढूंढ़ने में लगे हैं।

वह कुत्ता भी नरहरि के साथ स्टेशन कब आ गया है, इस ओर किसी का ध्यान नहीं। वह हांफ रहा था, बीच-बीच में पूंछ हिलाकर कूं···कूं कर रहा था।

नरहरि ने सामान वज़न करा कर चढ़ा दिया। झुक कर प्रणाम कर उन्हें विदा दी।

गाड़ी चल पड़ी।

नरहरि सीधा हावड़ा पुल पार कर दाहिनी ओर मुड़ गया।

सिर्फ़ वह कुत्ता प्लेटफ़ार्म पर खड़ा, चलती गाड़ी की ओर देख इधर-उधर दौड़ रहा था।

●

विसर्जन

कटक का दशहरा। विजयादशमी में सिर्फ़ दो दिन और रह गए हैं। चारों ओर दुर्गा-पूजा के लिए ज़ोरदार तैयारियाँ।

सब ओर अपनी-अपनी देवी को श्रेष्ठ आसन देने की चेष्टा चल रही है। रुपये-पैसों की किसी को परवाह नहीं—पानी की तरह बहाया जा रहा है।

पिछले वर्ष चौधरी बज़ार, बालू बज़ार में झगड़ा हो गया था, अतः इस बार उस गुस्से को उतारने के लिए दोनों दलों में भीतर-ही-भीतर एक-दूसरे के विरुद्ध ज़ोरदार तैयारी चल रही है। लाठी व लठैतों की पूरी व्यवस्था हो चुकी है। बस मौक़े की तलाश में चुप हैं। दोनों दलों के बीच प्रतिद्वन्द्विता की कोई सीमा नहीं रही। हज़ारों रुपये खर्च कर कलकत्ते से कारीगर मँगवाये हैं—दुर्गा को सजा देने के लिए।

× × ×

आज विजया-दशमी है। विसर्जन की करुण वंशी शहर के निद्रित वक्ष को कम्पित कर रही है। सब के मन में, पता नहीं क्यों, एक आशंका भरी है। लगता है, जैसे कुछ अनहोनी हो कर रहेगी।

सब आज बालू बज़ार व चौधरी बज़ार की मूर्तियों के पास इकट्ठा हो रहे हैं। ऐसी देवी किसी ने कभी देखी भी नहीं होगी। इतना सुन्दर रूप, कीमती साज-सजावट कटक में कभी नहीं हुई। हज़ारों रुपये खर्च हुए हैं इस मूर्ति के बनाने पर।

चौधरी बज़ार का दल आगे जा रहा है। बालू बज़ार वाले उन्हें लाँघ जाने को बैठे हैं, मगर लाँघ नहीं सकते। सब चुपचाप भीड़ को धकेल आगे-आगे चल रहे हैं। दर्शकों को लगता है अब कुछ हुआ, अब हुआ! कुछ हैं जो तमाशा देखने भर के लिए दोनों दलों को उकसाने में लगे हैं।

आगे चौधरी बज़ार का चौराहा है। यहाँ अगर बालू बज़ार वाले आगे न जा सके तो बस ठेठ तक पीछे ही चलना होगा। बालू बज़ार वालों की चाल में तेज़ी आ गई। यह चौराहा तेज़ी से पार करना होगा।

धगड़···धगड़···धूम···ड्रम बज उठे। धड़-धड़ कर सबका हृदय काँप उठा। युवक जन आगे बढ़कर कूद गए लाठी लेकर। बड़े-बड़े "माँ भगवती की जो इच्छा" मन ही मन स्मरण करने लगे।

चौधरी बज़ार वालों ने जम कर रास्ता रोक लिया। वे हमेशा आगे रहना

चाहते हैं। तभी एक लकड़ी का टुकड़ा जाकर चौधरी बज़ार वालों के बीच जा गिरा। बड़ी-सी लाइट टूट कर चूर-चूर हो गई, लाठी आकर चौधरी बज़ारवालों की देवी पर गिरी। विमान टूट गया। मच गई—मारो-मारो—की चीख़-पुकार। सब की देह का ख़ून गरम हो गया। ड्रम की आवाज़ तेज हो गई।

रह गए दो-चार क़दम, दोनों एक-दूसरे पर हमला करेंगे। अगला दल दूसरे पर हमला करेगा। अगला दल युद्ध की प्रतीक्षा में तैयार खड़ा है। पिछले दल के लोग उनके पास पहुँचने को व्यग्र हैं। बस, दस-बारह हाथ का फ़ासला रह गया! लाठियों की आवाज़ में भर उठा।

तभी दोनों दलों के बीच कोई खड़ा हो गया। सबने देखा आगंतुक एक महिला है। दोनों दल अवाक खड़े रह गये। लाइट आगे कर देखा, कोई औरत है माँग कर खाती वह—अँइठू की माँ है।

अँइठू की माँ की गोद में चिपटी है मरे बच्चे की सड़ी लाश! शायद तीन-चार दिन पहले मर चुका है। सड़ाँध चारों ओर भर रही है। सब नाक पर रूमाल रख अँइठू की माँ को भगाने लगे।

मगर अँइठू की माँ राह से हटी नहीं! बस, पगली की तरह ज़ोर से हँसने लगी—"मेरे अँइठू को खाने को दो—नौ! दिन से इसने कुछ नहीं खाया। इसे खाने न दोगे, तो कभी राह न छोड़ूंगी।" दोनों हाथ फैला, राह रोककर खड़ी हो गई। लाश पर से हाथ खिसक गया तो लद्ध से गिर पड़ी। दोनों ओर खड़े लोग हड़बड़ा कर पीछे हट गए। वह उसे गिरता देख चीख़ उठी—"रे रे!" धीरे-धीरे धरती से उठा कर कहने लगी—"रो मत··· मत रो मेरे लाल! लग गई? बस···" समझाने लगी।

उसका पागलपन देख दो-चार शैतान छोकरे आगे आये। "लगा घौल, हटा काँटा!" मगर मार खाकर भी अँइठू की माँ गुस्से में कहने लगी, "मारोगे?··· मेरे अँइठू को मारोगे···दुष्टों का ख़ून पी जाऊँगी? आ देखूं, अभी चबाती हूँ!" बाल हवा में फरफरा रहे थे। साड़ी भी छाती पर से कब गिर पड़ी थी, पता ही नहीं। कमर में खोंसे थी आँचल!

अँइठू की माँ की वह भयंकर मूर्ति देख डर उठे वे शैतान लड़के! उसकी गाली-गलौज से बचने के लिए भीड़ में दुबक गए। तनिक रुक कर वह लोगों की भीड़ से कहने लगी, "अँइठू ने नौ दिन से कुछ नहीं खाया! क्या था जो वह खाता?··· और उसे बुख़ार हो गया! देखो···मेरे बेटे की देह तवे की तरह जल रही है।··· एक पैसा दो बाबू! डागदर से दवा लाकर दूंगी! बस, यही एक है···।" आगे कुछ बोल नहीं पाई। फफक-फफककर रो पड़ी!

भीड़ में से दो-चार वृद्ध लोग निकल पड़े। तरह-तरह की बातें कहकर उसे यह बात समझायी—"तेरा अँइठू तो मर चुका है!"

मरने की बात सुन वह गुस्से में अनाप-शनाप गालियाँ बकने लगी। गुस्सा कुछ

ठण्डा होने के बाद कहने लगी, "अँइठूरे···मेरे अँइठू रे !"

बाजे बन्द हो गए। शत्रुता भूल दोनों दल वाले अँइठू की माँ की विकल चीख़-पुकार सुनने लगे। सैंकड़ों आँखों से आँसुओं की ऊष्म धार बहकर कटक की सड़क को भिगोती रही। इसके बाद वह खड़ी हो गई। सड़क के किनारे पड़े कुण्ड से दो-चार फटे चीथड़े निकाले। उसी में अपने कपड़े-लत्ते रखा करती थी। बिछा कर उस पर अँइठू को लिटा दिया।

जुलूस को रुका देख चौधरी बज़ार के नामी-गिरामी नेता मिस्सरजी आकर घटनास्थल पर पहुँच गए। मिस्सरजी के हाथ में थी रुद्राक्षमाला। देखा, यहाँ माँ भगवती दुर्गा का काम बन्द हो रहा ! गुस्से में वे लाल हो गए ! "उस भिखारिन को ठोकर से हटाकर माँ को आगे ले चलो !"—मिस्सरजी महाराज ने हुक्म दे दिया। अँइठू की माँ उन्हें भीड़ में देख न सकी। सिर्फ़ आवाज़ सुनकर ही गुस्से में जल उठी। मानो यह स्वर उसका बहुत दिनों से परिचित है। मानो इस आवाज़ ने उसके रुद्ध प्राणों पर सेल से वार कर दिया है। दुःख में, वेदना में वह तिलमिला उठी। धीरे-धीरे खड़ी हो गई। उस आवाज़ को लक्ष्य कर कहने लगी, "ले रख अपने बेटे को ! मैं जल गई इसकी ज्वाला में !" और छाती पर चिपटाई लाश मिस्सरजी के पैरों में डाल दी। और फिर उस विजन रात के अँधेरे में अँइठू की माँ कहीं लीन हो गई। सबने सोचा—पगली है ! बक रही है अंटशंट ! मिस्सरजी ने हुक्म दिया—ले जाओ जुलूस ! मगर जलूस कैसे जाय ? राह में लाश जो है ! लाँघ कर माँ भगवती का विमान कैसे जाये ? बड़े-बड़े बाम्हन-पण्डित निकलकर आये और शास्त्रों का उदाहरण देकर बात बताने लगे। आख़िर तय हुआ कि लाश को रास्ते से हटाना पहला कर्त्तव्य है। वरना माँ की देह अपवित्र हो जायगी !

तभी भीड़ से दो युवक निकल आये। खादी पहने हैं। लाश उठाकर—"राम नाम सत्य है"—ज़ोर-ज़ोर से कह मशान की ओर चल पड़े।

पीछे-पीछे चली देवी की शोभायात्रा। आगे अँइठू का ज़रा-सा शव—पीछे-पीछे माँ का उद्यत खड्ग—धरती पर प्रलय की वार्ता का प्रचार कर रहा है। बाजे बज उठे। "हरिबोल !" की ध्वनि। धरती की सारे दोषों—लूट-पाट, हानि-लाभ, मृत्यु के विरुद्ध माँ की जययात्रा शहर की छाती पर कंपायमान हो रही है। उत्कण्ठित जनता अननुभूत ध्वंस-रस में पागल होकर करालिनी माँ की मृण्मय दारु-मूर्ति को कन्धे पर उठा काठजोड़ी नदी के पुलिन की ओर चल पड़ी।

खाननगर के मशान में जब अँइठू की लाश माटी के गड्ढे में उतारी जा रही थी, उसी समय देवीघाट पर माँ भगवती की मृण्मय मूर्ति का काठजोड़ी नदी के जल में विसर्जन हो रहा था।

शंख, हुलुहुली, हरिबोल ध्वनियों से नदी का घाट गूँज रहा था। ● ●

विशेष—यह कहानी 1933 ई० में 'युग-वीणा' में प्रकाशित हुई थी।

सची राउतराय की कृतियाँ

अंग्रेज़ी में

द बोटमेन बॉय एंड अदर पोइम्स : हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय द्वारा अंग्रेज़ी में अनूदित (कलकत्ता, १९४२); द बोटमेन बॉय एंड फोर्टी पोइम्स : हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय तथा वी.सिंह द्वारा अनूदित (मॉडर्न रिव्यु प्रेस, कलकत्ता, १९५५); प्रेसिडेंशल एड्रेस : अखिल भारतीय कवि सम्मेलन, प्रथम सत्र (कलकत्ता, १९८७); द शॉर्ट स्टोरीज ऑफ सची राउतराय : (कलकत्ता, १९७२); उड़ीसा और भारत की कला, साहित्य और पुरातत्त्व पर शोध-पत्र। कविताएँ।

उड़िया में

काव्य : पाथेय (१९३२); पूर्णिमा (१९३३); पल्ली-श्री (१९४०); रक्त-शिखा (१९३९, प्रतिबन्धित); बाजी राउत (१९३८, ४२); अभिजान (१९३८); पाण्डुलिपि (१९४७); हासान्त (१९४८); भानुमतीर देश (१९४९); स्वागत (१९५८); कविता : १९६२ (केन्द्रीय साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत); कविता : १९६९; एशियार स्वप्न (१९६९); कविता : १९७१; कविता : १९७४; कविता : १९८३; कविता : १९८५; मायकोवोस्की कवितासंग्रह (१९६५, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार); कविता : १९८६; कविता : १९८७।

कहानियाँ और उपन्यास : मसनीर फूल (१९४७); माटीर ताज (१९४७); छई (१९४८); चित्रग्रीव (उपन्यास, १९३५); मन्कई तथा अन्यान्य गल्प (१९८३); नूतन गल्प (१९८७)।

समालोचना : साहित्य-विचार और मूल्यबोध (१९७२); आधुनिक साहित्य (१९८३)।

शोधकार्य : साहित्य मूल्यबोध (१९७४; साहित्य में मूल्यों के विकास का अध्ययन), जयदेव, रामायण बनाम महाभारत, उत्तरा फाल्गुनी (आत्मकथा)।

संकलन

सची राउतराय ग्रन्थमाला, भाग-१ (कविता, १९३५); सची राउतराय ग्रन्थमाला, भाग-२ (गद्य, १९७५)।

सन्दर्भ ग्रन्थ

सची राउतराय : एक जन-कवि (प्रस्तुति, १९५५); मॉडर्न रिव्यु प्रेस, कलकत्ता-९ द्वारा प्रकाशित इस ग्रन्थ में प्रो. हुमायूँ कबीर, डॉ. कालिदास, नाग, डॉ.के.आर. श्रीनिवास आयंगार, डॉ.पी.के. पारीजा, प्रो. विश्वनाथ सत्यनारायण, डॉ. सज्जाद जहीर, हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, आदि प्रसिद्ध भारतीय विद्वानों के २२ लेखों में राउतराय की कृतियों के समीक्षात्मक मूल्यांकन हैं; सची राउतराय अभिनन्दन ग्रन्थ (रूरकेला, १९८५); सची राउतराय : एक कवि (समीक्षात्मक मूल्यांकन); पद्मश्री राउतराय ('६९)।



सच्चिदानन्द राउतराय

जन्म—1916, खुर्धा, उड़ीसा में। स्वाधीनता-संग्राम सहित अनेक आन्दोलनों में भाग लेने के कारण कई बार जेल-यात्रा। बी. ए. करने के उपरान्त बीस वर्ष तक कलकत्ते में नौकरी और फिर कटक-वास।

12 वर्ष की आयु से लेखन में प्रवृत्त। प्रथम काव्य-संकलन 'पाथेय' 1932 में प्रकाशित। आधुनिक उड़िया कविता के भगीरथ के रूप में प्रख्यात। कथा-शिल्पी, नाट्यकार एवं साहित्य-मनीषी की हैसियत से भी भारतीय साहित्यकारों में अग्रगण्य।

18 काव्य-संकलन, 4 कहानी-संग्रह, 1 उपन्यास, 1 काव्य-नाटक, साहित्य-समीक्षा की तीन पुस्तकें तथा साहित्यिक मूल्यों पर एक महत्त्वपूर्ण अनुसंधान कार्य प्रकाशित।

पद्मश्री, साहित्य अकादमी पुरस्कार, सोवियत लैंड पुरस्कार, आंध्र विश्वविद्यालय एवं ब्रह्मपुर विश्वविद्यालय द्वारा डॉक्टरेट की मानद उपाधि से सम्मानित। अध्यक्ष, उड़ीसा साहित्य अकादमी; सदस्य , फ़िल्म सेन्सर बोर्ड। विभिन्न देशों में आयोजित साहित्य-संगोष्ठियों में प्रतिनिधित्व। उड़िया के एक साहित्यिक त्रैमासिक का संपादन। उड़िया कला परिषद का संस्थापन।

और अब वर्ष 1986 के ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित।



भारतीय ज्ञानपीठ

उद्देश्य

ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण

संस्थापक

(स्व०) साहू शान्ति प्रसाद जैन
(स्व०) श्रीमती रमा जैन



अध्यक्ष

साहू श्रेयांस प्रसाद जैन



मैनेजिंग ट्रस्टी

श्री अशोक कुमार जैन